महोपाध्याय ललितप्रभसागर

ज्योति कलश छलके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"महावीर के अधर मौन हैं, पर स्वयं महावीर का जीवन मुखर है। शान्ति उनकी आभा है और वीतरागता उनका जीवन। चलते वक्त चरणों में स्वर्ण-कमलों का बिछना, स्वर्ण-रत्न के समवशरण रचना—ये सब तो भक्तों की भक्ति का अतिशय है। वस्तुतः महावीर निस्पृह हैं, वीतराग हैं। आत्मा ही उनकी सम्पदा है। परमात्मा ही उनका स्वरूप है, गुरु भी अपने वे ही हैं। उनका भगवान् भी उनमें ही साकार हुआ है। उनकी भगवत्ता फैली है चहुँ ओर, सब ओर। ज्योति कलश छलके।

—ललितप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योति कलश छलके

(महावीर वाणी)

महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

श्री जितयशा फाउंडेशन, कलकत्ता
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योति कलश छलके/ ललितप्रभ

प्रकाशक :
श्री जितयशा फाउंडेशन,
रूम न. २८
९सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट)
कलकत्ता-६९

प्राकृत भारती अकादमी,
यति श्यामलाल जी का उपाश्रय
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
जयपुर (राजस्थान)

प्रेरणा :
गणिवर श्रीमहिमाप्रभ सागरजी

सौजन्य :
श्रीमती चन्द्रकान्ता सुजानमल नागौरी,
इन्दौर

प्रकाशन वर्ष : दिसम्बर १९९३

मूल्य : २० रुपये

मुद्रक/टाईपसेटिंग
अप्सरा फाईन आर्ट, इन्दौर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व की शाश्वत प्रतिमा

साध्वी विश्वदर्शनाश्री

को

(देह-विलय : ३.१२.९३, सम्मेतशिखर)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

श्री जितयशा फाउंडेशन एवं प्राकृत भारती अकादमी के 'संयुक्त प्रकाशन' में 'ज्योति कलश छलके' नामक प्रवचन-पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है।

पुस्तक में विश्रुत विद्वान महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी द्वारा भगवान महावीर के कतिपय लोकोपयोगी सूत्रों पर दिये गये प्रभावी प्रवचनों का महत्वपूर्ण संकलन है। प्रवचन के क्षेत्र में महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी का अपना स्थान है। शास्त्रीय चेतना के साथ युगीनता एवं मनोवैज्ञानिकता का जो प्रयोगधर्मी रूप उनके प्रवचनों में प्राप्त होता है, वह उनकी प्रभावकता को परिपुष्ट करती है। मानवता की धुरी पर केन्द्रित उनका चिन्तन-मनन व्यक्ति की अंतश्चेतना को जागृत और पवित्र करने पर जोर देता है।

अपने इन प्रवचनों में मनीषी संत ने जनसमुदाय को सेवा, भाईचारा, मानवता और सत्य की उपासना पर बल दिया है, वहीं तनाव-मुक्ति, मानसिक एकाग्रता, ध्यान और आत्म-शुद्धि के लिए भी परामर्श दिया है। निश्चय ही ग्रन्थ की उपयोगिता सार्वजनीन है। किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं वरन् हर कौम, हर आदमी के लिए ये प्रवचन प्रशस्त मार्गदर्शक, ज्ञानवर्धक और मंगलकर हैं।

समर्पित है पाठक-वर्ग को महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी का स्वस्तिकर लेखन, हमारा अभिनव प्रकाशन।

डी. आर. मेहता,
सचिव
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

प्रकाश दफ्तरी
सचिव
जितयशा फाउंडेशन
कलकत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

महावीर का मौलिक मार्ग	१
परमात्मा : स्वभाव सिद्ध अधिकार	२३
मन : चंचलता और स्थिरता	४५
सर्वोदय हो साक्षीभाव का	६७
अनासक्ति : संसार में संन्यास	८९
सत्य वाणी का, अंतर का	११३
दीप बनें देहरी के	१३७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का मौलिक मार्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"माना कि धर्म की अपनी मर्यादाएँ होती हैं और प्रत्येक धार्मिक को उन मर्यादाओं का पालन करना चाहिए पर, यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक युग की भी अपनी मर्यादाएँ होती हैं और उसके चलते आवश्यक संशोधन न केवल रख-रखाव में अपितु, आचरण-संहिता में भी होना चाहिए, ताकि धर्म और जीवन, शास्त्र और आचरण, कथनी और करनी का फर्क न रहे।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर चैतन्य के शिखर हैं, अध्यात्म के गौरीशंकर। इसलिए इस चैतन्य-शिखर पर हमें नाज होना चाहिए। महावीर ने साधना-मार्ग में गगनचुम्बी मीनारों को छुआ है, अगर यह कहूँ कि उससे भी दो कदम आगे बढ़ाए हैं तो ठीक होगा। इसलिए महावीर मात्र दार्शनिक नहीं, अपितु अमृत साधक-पुरुष हैं। उन्होंने जिन्दगी को सच में जिया है। ऐसा जिया है, जिसे हम प्रकाश का जीना कहते हैं। महावीरत्व उनके रोम-रोम में समाया था और वर्धमान उस अर्थ को साथ लिये चलता था, जिसमें रुकावट का कभी नामो-निशान भी न हो। महावीर और वर्धमान– ये दोनों नाम केवल नाम तक ही एक-दूजे के पर्याय हों ऐसा नहीं है, वास्तव में इन दो शब्दों में एक जीवन-शैली प्रगट हुई है।

अगर हम महावीर की गाथाओं को छुएँ, तो उनके वक्तव्यों में दार्शनिक भाषा कम जीवन की भाषा अधिक दिखायी देगी। बिल्कुल साफ-सुथरे और जीवन के साथ सीधा तालमेल बिठाने वाले हैं महावीर के वचन। उनका उपदेश वही होता था जो जीवन में अनुभूत हो। इसलिए महावीर, जीवन और सिद्धान्त तीनों एक-दूजे के पर्याय और परस्पर पूरक हैं।

महावीर के अनुसार उपदेश वही देना चाहिए जिसका स्वयं के जीवन के साथ सीधा तालमेल हो। केवल भाषणबाजी व तर्क-वितर्क हमारे शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित कर सकते हैं, लेकिन जीवन के साथ उनका दूर का भी रिश्ता नहीं जुड़ पाता। जीवन का साधना-शून्य होना और किताबी ज्ञान प्राप्त कर सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना मूलतः तो आत्म-प्रवंचना ही है। स्वयं अतिक्रमण करेंगे और दूसरों को प्रतिक्रमण में जीने की बात कहेंगे; कृत्य पाप के और भाषा पुण्य की– यह सब जीवन का दोहरापन नहीं तो और क्या है ?

महावीर दोहरेपन के विरोधी हैं। आचरण-शुद्धि के अभाव में, महावीर आचार्यत्व पर भी प्रश्नचिह्न लगाने में संकोच नहीं करेंगे। वह अनुशास्ता किस काम का जो स्वयं अनुशासन की अवहेलना करता हो। कथनी और करनी में ऊँच-नीच न हो इसीलिए महावीर ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिनिष्क्रमण के पश्चात् मौन रखा। तब तक वे चुप्पी साधे रहे जब तक परम ज्ञान को आत्मसात् न कर लिया। प्रव्रजित होने के पश्चात् ऐसे अनेक अवसर आये जब महावीर को प्रवचन देना चाहिये था, पर महावीर ने मौन रखना उचित समझा।

महावीर के अधर मौन हैं, पर स्वयं महावीर का जीवन मुखर है। शान्ति उनकी आभा है और वीतरागता उनका जीवन। चलते वक्त चरणों में स्वर्ण-कमलों का बिछना, स्वर्ण-रत्न के समवशरण रचना—ये सब तो भक्तों की भक्ति का अतिशय है। वस्तुतः महावीर निस्पृह हैं, वीतराग हैं। आत्मा ही उनकी सम्पदा है। परमात्मा ही उनका स्वरूप है, गुरु भी अपने वे ही हैं। उनका भगवान् भी उनमें ही साकार हुआ है। उनकी भगवत्ता फैली है चहुँ ओर, सब ओर। ज्योति कलश छलके।

महावीर के वचन कोरे अंधेरे में चलाये हुए तीर नहीं हैं। ये सब वे वचन हैं, जो सत्य के सान्निध्य में स्वर्ण-सूत्र बने हैं। महावीर का एक भी वक्तव्य, ऐसा प्राप्त नहीं होता है जो उन्होंने परमज्ञान को प्राप्त करने से पहले कहा हो। सत्य कहा जाना चाहिए, लेकिन सुनी-सुनायी बातों के आधार पर नहीं। वह सत्य सौ फीसदी प्रामाणिक कैसे हो सकता है जो अनुभव के दायरे से न गुजरा हो। इसीलिए राम का सत्य राम का है और कृष्ण का सत्य कृष्ण का; महावीर और बुद्ध का सत्यानुभव उनका अपना था। किसी ने किसी का अनुकरण नहीं किया। अनुभूति भी अपनी रही और अभिव्यक्ति भी अपनी। सब स्वतन्त्र अस्तित्व हैं और सबके अनुभव भी स्वतंत्र, अभिव्यक्ति की शैली भी स्वतन्त्र।

महावीर ने बारह वर्ष तक साधना की— एकान्त, मौन और ध्यान तीनों से गुजरे। फिर जो जाना, उसे कहा। सच तो यह है कि इन बारह वर्षों की साधना का परिणाम ही आगम है। महावीर ऐसे सत्य को भी कभी अभिव्यक्त करना नहीं चाहते थे, जो अनुभव के गलियारों से न गुजरा हो। इसलिए महावीर की ये छोटी-छोटी प्यारी-सी गाथाएँ सत्य, धर्म और साधना का सार है।

अपनी वर्षों की साधना के पश्चात् महावीर ने सत्य की प्रभावना की, दुनिया में बाँटा। यदि सत्य को जानने के बाद भी दुनिया में न बाँटा गया, तो सत्य अपनी विराटता खो सकता है। इसलिए महावीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ने दुनिया को मार्ग दिया; वह मार्ग जिस पर वे चल चुके थे, जिससे मंजिल हासिल कर चुके थे। उन्होंने अनुसरण और अनुकरण की भाषा नहीं कही, अपितु मात्र दिशा-निर्देश दिया और सभी को खोज करने की प्रेरणा और स्वतन्त्रता दी।

धार्मिक जगत् में व्यक्ति-व्यक्ति को स्वतन्त्रता देना महावीर का लक्ष्य था। उन्होंने इंसान को कभी ईश्वर की कठपुतली नहीं बनने दिया कि जैसे ईश्वर नचाता जाये वैसे इन्सान नाचता जाये। महावीर ने सर्वप्रथम, व्यक्ति को साम्प्रदायिक कट्टरता से मुक्त करने की कोशिश की, क्योंकि साम्प्रदायिकता में जकड़ा व्यक्ति सत्य की खोज नहीं करता, वह पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होता है। उसके लिए वह झूठ भी सच होता है, जो उसके सम्प्रदाय में मान्य हो। वह सत्य को ग्रहण नहीं करता, अपितु उस तथाकथित सत्य के लिए भी कदाग्रह करता है। 'अपना सच पराया झूठ' यह साम्प्रदायिक व्यामोह नहीं तो और क्या है ?

महावीर के अनुसार तो सत्य और धर्म हर स्थान पर है, हर मजहब में है। इसे किसी सम्प्रदाय विशेष की बपौती नहीं बनाया जा सकता। उनके अनुसार, तुम अपने धर्म का पालन करो और इसके लिए स्वतन्त्र भी हो, पर अपनी मान्यताओं को दूसरों पर थोपने का प्रयास क्यों करते हो? इसीलिए महावीर ने अपने शिष्यों को आदेश नहीं, उपदेश दिया। जैन आगम महावीर के आदेश नहीं हैं, उपदेश हैं। आदेश, दूसरों पर अपनी मान्यताओं का बलात् आरोपण है और उपदेश प्रेरणा है। माने न माने—सब कुछ सामने वाले पर निर्भर। आदेश अर्थात् करो और उपदेश अर्थात् करना चाहिए। उपदेश अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए दूसरे की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना है, जबकि आदेश किसी की स्वतंत्रता का दमन है। शिष्य को उपदेश दिया जाता है और गुलाम को आदेश। इसलिए किसी उपदेष्टा को, गुरु या आचार्य को उपदेश देना चाहिए, आदेश की भाषा का उपयोग नहीं करना चाहिए। गुरु-शिष्य को उपदेश दे और गुरु का उपदेश ही शिष्य के लिए आदेश बन जाये। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को चिरस्थायी रखने का यह अचूक साधन है।

मैं उपदेश देता हूँ, अधिक से अधिक स्वीकृति लेकिन आदेश नहीं। आदेश की भाषा में मुनि-जीवन की अनेक मर्यादाओं का अतिक्रमण सम्भव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर मात्र देश को ही स्वतंत्र नहीं देखना चाहते, वे अध्यात्म के मार्ग में भी व्यक्ति-व्यक्ति को स्वतंत्रता देते हैं। यहाँ तक कि वे अपने शिष्यों और श्रावकों से भी आदेश की भाषा में बातचीत नहीं करते हैं। गुरु वह नहीं है, जो अहंकारी है। जीवन में विनम्रता ही गुरुत्व की पहचान है। महावीर हमारे लिए आचरण संहिता का निर्माण अवश्य करते हैं, लेकिन उसके परिपालन के लिए आदेश नहीं देते हैं। 'जं सेयं तं समायरे' यह उनका वह वचन है जो, आध्यात्मिक क्षेत्र में महावीर द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता दे रहा है। इसलिए आध्यात्मिक जगत में महावीर को स्वतंत्रता का हिमायती माना जाता है। महावीर के अनुसार व्यक्ति सुनकर सत्य को जानता है और सुनकर ही असत्य को। सत्य-असत्य दोनों को जान-समझ लेने के पश्चात व्यक्ति को जो मार्ग श्रेयस्कर लगे उस पर अपने कदम बढ़ाने चाहिये।

मेरी नजर में महावीर असाम्प्रदायिक मंत्र के दाता हैं, सर्वधर्म समभाव के पक्षधर हैं। सम्प्रदाय में निर्णय अनुयायी के हाथ में नहीं, अनुशास्ता के हाथ में होता है। जबकि अध्यात्म में निर्णय की क्षमता, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पैदा की जाती है। जब तक हम किसी का अनुसरण करते रहेंगे, लकीर के फकीर बने रहेंगे, तब तक मुक्त कैसे हो पायेंगे। उस आचरण से भी अन्त में व्यक्ति को क्षोभ होता है जो किसी और का गढ़ा-गढ़ाया है। वहाँ आचरण-संहिता तो होगी पर लीक से हटकर नहीं। फिर व्यक्ति मुहर तो उसी आचरण की लगाये रखेगा, पर अपने जीवन को उसके अनुकूल न पाकर गलियाँ ढूँढेगा। इसलिए महावीर ने औरों पर शासन का निर्देश नहीं दिया, पर उनकी परवर्ती शिष्य परम्परा ने उनके संकेतों को ही अनुशासन की संज्ञा दे दी।

समय की मार ने सारी दुनिया को बदल दिया। महावीर के युग में और आज के युग में बेहद फर्क है, पर अनुशासन, नियम-निर्देश सब कुछ वही का वही।

समय के चलते आचरण में फर्क हुआ, लेकिन आचार सम्बन्धी अनुशासन-संहिता वही की वही रही। परिणाम यह हुआ कि शास्त्रीय निर्देशों/मर्यादाओं और वर्तमान के आचरण में लम्बा फासला हो गया। हम आवश्यकतानुसार अनुशासन-संहिता को न बदल पाये मात्र उसमें से गलियारे निकालते गये परिणाम यह हुआ कि एक-पर-एक अनेक नियम ताक में रख दिये गये। शास्त्र और जीवन, कथनी और करनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में स्पष्ट फर्क हो गया। माना कि धर्म की अपनी मर्यादाएँ होती हैं और प्रत्येक धार्मिक को उन मर्यादाओं का पालन करना चाहिए पर, यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक युग की भी अपनी मर्यादाएँ होती हैं और उसके चलते आवश्यक संशोधन न केवल रख-रखाव में अपितु, आचरण-संहिता में भी होना चाहिए, ताकि धर्म और जीवन, शास्त्र और आचरण, कथनी और करनी का फर्क न रहे। भगवान पार्श्वनाथ द्वारा निर्धारित चतुर्याम-धर्म को महावीर द्वारा पाँच महाव्रतों में ढालना इस बात का साक्षी है कि युगानुरूप अनुशासन-संहिता में परिवर्तन होता आया है।

हम शास्त्रीय मोह न रखें, शास्त्रीय चेतना रखें। शास्त्रों की विद्वत्ता तो हर कोई हासिल कर सकता है, लेकिन शास्त्रीय चेतना तभी सम्भव है जब हमें शास्त्रों की प्रत्यक्षानुभूति हो। आज के सूत्र में महावीर साधना का मार्ग दे रहे हैं। साधक कैसे धीरे-धीरे अपने आपको आत्मसात् करे, स्वयं का अन्वेषण करे, यही इस सूत्र का सार-संदेश है। इस सूत्र में महावीर, मार्ग का भी निर्देशन कर रहे हैं और मार्ग फल का भी। यह बिन्दु से सिन्धु की यात्रा है, अणु से विराट की यात्रा है।

ये सूत्र सत्य की सहज अभिव्यक्ति हैं, सीधे-सादे पर बेदाग हीरे हैं ये। न इनमें बांसुरी का श्रृंगार है और न ही धनुष की टंकार। यह तो एक आत्मसाधक के अन्तःस्थल से उठती हुई झंकार है। इन सूत्रों को न तो युद्धभूमि में कहा गया है और न ही शूली पर लटकते हुए या जहर का प्याला पीते हुए। ये सूत्र तो महावीर के मुख से वैसे ही सहज रूप में निकले हैं जैसे गंगोत्री से गंगा। महावीर के इन महासूत्रों का हम आचमन करें, मनन करें, आचरण करें।

आज का सूत्र है–

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि मोक्खस्स निव्वाणं॥

दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र नहीं होता, चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता है और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता है।

सूत्र में पाँच प्रमुख शब्द हैं–दर्शन, ज्ञान, चारित्र, मोक्ष और निर्वाण। इनमें प्रथम तीन मार्ग हैं और शेष दो मार्गफल। महावीर क्रमशः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकास के पक्षधर हैं—सर्वप्रथम दर्शन-शुद्धि, फिर विचार-शुद्धि और फिर जीवन-शुद्धि। निर्वाण इन तीनों का समवेत परिणाम है।

महावीर ने कहा दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता, बात महत्वपूर्ण है। साधना के मार्ग में ज्ञान-चारित्र से भी पूर्व दर्शन को आत्मसात् करना अनिवार्य है। दर्शन-शुद्धि के अभाव में ब्रह्मचर्य का नियम तो होगा, लेकिन वासना की तरंगें फिर भी जीवित रहेंगी। क्षमा माँगने की प्रवृत्ति तो होगी, पर क्रोध निस्तरंग नहीं हो पाएगा। अतः महावीर दर्शन-विशुद्धि पर ज्यादा जोर दे रहे हैं। अगर नजरें निर्मल नहीं हैं तो सब कुछ बेकार। जिसकी जैसी नजरें होती हैं, दुनिया उसको वैसी ही नजर आती है। दीवार भले ही सफेद हो पर, जिसने काला चश्मा लगा रखा है उसे तो वह भी काली ही दिखाई देगी। दुनिया कहेगी दीवार सफेद है पर, उसका कदाग्रह काली पर ही होगा।

महावीर इसी काले चश्मे को उतारना चाहते हैं, ताकि सच को सच और झूठ को झूठ रूप में देखा जा सके। इसीलिए वे साधक की हथेली में सम्यक्-दर्शन का दीप थमा रहे हैं, ताकि वह सत्-असत का विवेक कभी खोए नहीं। महावीर, गीता के कृष्ण की तरह, यह कभी नहीं कह सकते कि दुनिया भर के पाप करके मेरी शरण में आ जा, मैं तुम्हें तार दूँगा। महावीर की नजरों में यह पुरुषार्थहीनता है। जब पाप स्वयं ने किये हैं तो उनसे छुटकारे की गुहारें परमात्मा से क्यों? यह तो ऐसा हुआ जैसे कि बंधे अपने हाथों से, छुटकारे के लिए प्रार्थना औरों से। जिस पाप से छूटने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हो, तो क्या पाप करने से पहले परमात्मा से परामर्श लिया था कि पाप किया जाये या नहीं।

इसलिए बेहतर होगा हम निष्पाप होने के लिए, खुद निर्विकार होने का प्रयास करें। जीवन संस्कार के लिए पहली आवश्यकता सम्यग्-दर्शन की है। सम्यग्-दर्शन के अभाव में ज्ञान भी सौ फीसदी सम्यग् नहीं बन पायेगा। एक बात तय है कि जब तक ज्ञान सही नहीं होगा, चारित्र भी जीवन का मौलिक सृजन नहीं, अपितु अन्धानुकरण होगा। अन्धानुकरण में भला कभी आत्म-अनुसन्धान होता है ? वहाँ केवल रटी-रटायी बातें होती हैं, भेड़चाल होती है।

महावीर सत्य को आँखों से दिखलाना और प्रज्ञा से अनुभव कराना चाहते हैं। आँखों देखी सो सच्ची, कानों सुनी सो झूठी। आँखों से देखी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बात सच मानी जाती है और कानों से सुनी बात झूठी। इसलिए मुझसे अगर कोई किसी के बारे में कुछ कहे तो, मैं सबसे पहले यही पूछता हूँ–'क्या यह सब तुमने आँखों से देखा ?' अगर नहीं, तो सुनी-सुनायी बातों पर शिकायत करना, कच्चे कान वालों की निशानी है। जो सुनी-सुनायी बातों पर विश्वास करते हैं, वे कानों से कच्चे हैं।

दर्शन से ज्ञान और चारित्र का प्रक्षालन होता है। एक ज्ञान किताबी होता है और एक अन्तर् से निष्पन्न। दोनों में फर्क है। जो ज्ञान अन्तर से निष्पन्न होता है, वह जीवन का ज्ञान है। यह भीतर विराजे शिव के तीसरे नेत्र का उद्घाटन है।

जैसे बच्चे के पैदा होने पर, दो अन्य चीजें भी पैदा होती है–'माँ' और 'दूध', वैसे ही दर्शन-विशुद्धि होने पर ज्ञान एवं चारित्र भी मुखर होता है। जब बच्चा पैदा होता है, तो मात्र अकेला बच्चा ही पैदा नहीं होता, स्वयं 'माँ' पैदा होती है और पैदा होता है माँ का दूध। वैसे होने में तो परखनली में बच्चा पैदा हो जाएगा, पर ऐसा करने से मातृत्व पैदा नहीं होगा, छाती में दूध नहीं होगा। मातृत्व की अनुभूति ही सन्तान के जन्म का मुख्य गौरव है।

दर्शन के अभाव में प्राप्त ज्ञान और चारित्र परखनली में बच्चा पैदा करने के समान है। वहाँ मस्तिष्क में जानकारियाँ ढेर सारी होंगी, देखा-देखी आचरण भी होगा, लेकिन अन्तर्-दृष्टि नहीं खुल पाएगी, अन्तर्-जीवन में अध्यात्म की सुवास नहीं होगी।

आज हम महावीर के साधना क्रम के ठीक विपरीत चल रहे हैं। सभी चारित्र अंगीकार करने पर जोर दे रहे हैं। शिष्य-वृद्धि का लोभ संवरण न कर पाने के कारण प्रव्रज्याएँ तो बहुत हो जाती हैं, पर ऐसे लोग जीवन को आध्यात्मिक बनाने के नाम पर शून्य रह जाते हैं। महावीर दर्शन, ज्ञान और चारित्र का क्रम देते हैं। हमने इसके विपरीत मार्ग अपना लिया। पहले चारित्र, फिर ज्ञान, फिर कहीं दर्शन। परिणाम यह होता है कि दीक्षा के नाम पर वेश परिवर्तन हो जाता है, दो समय प्रतिक्रमण या संध्या-वंदन के पाठ बोल लिये जाते हैं, केश लुंचन और पद-विहार भी हो जाता है, लेकिन भीतर का जो परिवर्तन होना चाहिये, वह नहीं हो पाता। पहले पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, माता-पिता का मोह था अब गुरु और सम्प्रदाय का मोह हो गया। पहले धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा का अहंकार था अब जप-तप, पद-प्रतिष्ठा या चारित्र-पालन का अहंकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर बैठे। पहले पति-पत्नी, बच्चों पर क्रोध करते थे अब शिष्य-श्रावकों पर करने लगे। परिवर्तन कहाँ हुआ ! यह तो स्थानान्तरण हुआ। पात्र बदल गये पर रंग नहीं बदला। क्रोध, मान, माया, लोभ सब कुछ जीवित रह गये। दीक्षा महज वेश परिवर्तन नहीं है, अपितु जीवन परिवर्तन की वह साधना है जिसमें अशुभ विगलित होता है, शुभ की ओर कदम बढ़ते हैं, जिसकी मंजिल शुद्धत्व है।

दीक्षा को मात्र वेश-परिवर्तन तक ही सीमित न रखें। सर्वप्रथम दर्शन-विशुद्धि की दीक्षा होनी चाहिये फिर ज्ञान-शुद्धि तत्पश्चात् चारित्र-विशुद्धि की। सच में तो यही जीवन-विशुद्धि का राजमार्ग है। मनोदृष्टि की निर्मलता के अभाव में, हमारा ज्ञान हमें सही रास्ते पर अडिग नहीं रख पायेगा और बिना सही ज्ञान के हमारे आचार व्यवहार का कोई आदर्श नहीं होगा। हम अपना अन्तर सुधारें ताकि बाहर ऐसा कुछ परिवर्तन हो जिसे हम जीवन कह सकें। दर्शन-शुद्धि के बाद ज्ञान की उपलब्धि ठीक वैसे ही है, जैसे नौ माह गर्भ का भार सहन करने के बाद पुत्र की उत्पत्ति।

एक बात और समझने जैसी है कि ज्ञान केवल सत्य का करना ही पर्याप्त नहीं है, असत्य का भी ज्ञान होना आवश्यक है। जब तक झूठ को झूठ रूप में नहीं जानेंगे, तब तक सच की सही पहचान नहीं हो पायेगी। ज्ञान आखिर ज्ञान है, चाहे असत्य का ज्ञान हो चाहे, सत्य का। अंधा व्यक्ति मात्र दूसरों को ही नहीं देख सकता, ऐसी बात नहीं है, वह अपने-आपको भी नहीं देख पाता है। अगर वह किसी अन्य सहारे से स्वयं का अनुभव भी करता है तो वह अपूर्ण माना जायेगा।

महावीर के अनुसार ज्ञान दर्शन के साथ हो। वे दोनों को आत्मसात् करने की प्रेरणा दे रहे हैं। उनके अनुसार बिना दर्शन के ज्ञान सम्यग् होना सम्भव नहीं है, 'ना दंसणिस्स नाणं'–दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता। जैसे बिना दो पहियों के गाड़ी नहीं चल सकती, बिना दो पटरी के रेल नहीं सरक सकती वैसे ही बिना दर्शन और ज्ञान के जीवन-विशुद्धि नहीं हो सकती।

साधना के मार्ग में सर्वांगीण विकास के लिए बहुआयामी परिश्रम करना होता है। वह माँ भी, माँ कहलाती है जो नौ माह तक गर्भ का भार वहन करती है और वह औरत भी माँ कहलाती है जो किसी अन्य के जाये को अपना बेटा मानती है, पर इसमें फर्क है। बच्चा पैदा करके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माँ हुआ जाता है और गोद लेकर माँ माना जाता है। ऐसे तो एक वन्ध्या भी माँ कहला सकती। लेकिन वह अपने भीतर के मातृत्व का, दूध घुला वात्सल्य पैदा नहीं कर सकती। वहाँ छाती का खून, दूध नहीं बन पाता।

महावीर आज के सूत्र में यही सब कुछ बता रहे हैं। उनके मार्ग में बाह्य-आचरण और शास्त्र-अभ्यास का मूल्य है, पर उससे भी ज्यादा शुद्ध श्रद्धा का मूल्य है, सम्यग्-दर्शन का मूल्य है। सच तो यह है कि सम्यग्-दर्शन ही साधना का प्रथम चरण है और वही अन्तिम। बिना सम्यक्त्व के अनेक भवों में किया गया चारित्र का पालन भी सार्थक परिणाम नहीं दे पायेगा।

महावीर कह रहे हैं 'दर्शन के अभाव में ज्ञान नहीं होता।' ऐसा नहीं है कि महावीर यह बात केवल इस सूत्र या गाथा में कह रहे हों, हकीकत तो यह है कि महावीर की प्रत्येक गाथा या आगम सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए ही प्रेरित करते हैं। दर्शन-विशुद्धि के अभाव में की जाने वाली समस्त क्रियाएँ, अंधेरे में थेंगले लगाने के समान है।

सम्यग्-दर्शन का संदेश देकर महावीर सर्वप्रथम हमारी मानवीय दृष्टि को निर्मल करना चाहते हैं। जैसी नजरें होती हैं, नजारा वैसा ही नजर आता है। पवित्र निगाहें जहाँ सदा पवित्रता ढूँढती हैं, वहीं अपवित्र निगाहें सदा अपवित्रता। हंस-दृष्टि जिस पानी में मोती ढूँढता है उसी पानी में बगुला-दृष्टि मछली ढूँढता है। निगाहों का ही तो यह फर्क है कि एक ही व्यक्ति किसी को सज्जन प्रतीत होता है और किसी को दुर्जन। कोई महावीर में महावीरत्व, बुद्ध में बुद्धत्व और ईसा में ईश्वरत्व ढूँढ लेता है, तो कोई उन्हीं में वह सब कुछ पाता है कि उनके कानों में कीलें गाड़ता है, वेश्याओं के साथ उनके नाम जोड़ता है, शूली पर लटकाता है। दृष्टि का ही तो यह फर्क है कि कोई राम में रमण करता है, कृष्ण का कीर्तन करता है तो कोई रावण या कंस बनकर उन्हीं की शक्ति को ललकारता है।

गौतम और गौशालक दोनों ने महावीर का सामीप्य पाया, युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों ने कृष्ण का सान्निध्य पाया, लेकिन महावीर की महावीरता और वीतरागता को तथा कृष्ण के कर्मयोग को गौशालक और दुर्योधन नहीं पहचान पाये। यह पहचान तो गौतम और युधिष्ठिर जैसे लोगों के लिए ही संभव है। अगर दुर्योधन इस दुनिया में सज्जन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ढूँढने जाएगा, तो एक भी नहीं मिलेगा और यदि युधिष्ठर दुर्जन ढूँढने जाएगा, तो उसे सम्पूर्ण विश्व में एक भी दुर्जन दिखाई नहीं देगा। जो जैसा स्वयं होगा, दुनिया को वह वैसा ही पाएगा।

आवश्यकता है सर्वप्रथम स्वयं को निर्मल करने की, अपनी नजरों को पवित्र करने की। स्वयं की पवित्रता ही अन्तर-अमृत को सुरक्षा प्रदान कर सकेगी। शुभ को आत्मसात् करने के लिए अशुभ से छुटकारा पाना होगा। विष के घड़े में डाला गया अमृत क्या अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख पाएगा ?

यह महावीर की विशेषता है कि वे अमृत उड़ेलने से पहले पात्र का प्रक्षालन कराते हैं, अन्यथा रद्दी की टोकरी में जो कुछ डाला जाएगा, रद्दी बन जाएगा। सम्यग्-दृष्टि के अभाव में ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति तर्क बुद्धि में तो पारंगत हो जाएगा, पंडित भी कहला लेगा, पर प्रज्ञा-पुरुष नहीं हो पाएगा, जीवन मूल्यों एवं चैतन्य ऊर्ध्वारोहण के सन्दर्भ में पिछड़ा हुआ रह जाएगा।

साधना के मार्ग में दर्शन-विशुद्धि पर जितना जोर महावीर ने दिया, संभवतः उतना अभी तक कोई न दे पाया। कहीं ज्ञानवादी हुए, कहीं क्रियावादी, पर महावीर तो इन वाद-विवादों से मुक्त हैं। वाद-विवाद वहाँ होता है, जहाँ व्यक्ति अपने सिद्धांतों को सच और दूसरों को झूठ मानता है। यहाँ तो सब कुछ स्वीकार है। सम्यग्-दृष्टि के लिए तो मिथ्या ग्रंथ भी सम्यग्-शास्त्र बन जाता है। उसके पास तो सम्यग्-दर्शन की ऐसी फिल्टर मशीन है जो गन्दगी को अलग कर जल को स्वच्छ कर देती है।

सम्यग्-दर्शन के अभाव में, महावीर की दृष्टि में, ज्ञान और चारित्र की कोई विशेष कीमत नहीं है। सच तो यह है कि ज्ञान और चारित्र में प्राण, सम्यग्-दर्शन के ही होते हैं। बिना प्राण की देह कैसी ! कुंदकुंद ने तो यहाँ तक कहा है-

दंसण भट्ठा भट्ठा, दंसणभट्ठस्स णत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ॥

जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे भ्रष्ट हैं। दर्शन-भ्रष्ट व्यक्ति कभी निर्वाण को हासिल नहीं कर सकता। चारित्र रहित व्यक्ति फिर भी सिद्धत्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हासिल कर सकता है, लेकिन दर्शन-भ्रष्ट व्यक्ति कभी सिद्धत्व हासिल नहीं कर सकता ।

महावीर मात्र व्यावहारिक सिद्धान्तों का ही प्ररूपण नहीं कर रहे हैं, उससे भी अधिक आत्मसिद्धान्तों की चर्चा कर रहे हैं । वे आजकल की तरह लीपा-पोती की भाषा प्रयुक्त नहीं कर रहे हैं । जो कुछ कह रहे हैं, जिस विषय में कह रहे हैं, तलस्पर्श करके कह रहे हैं । दुनिया की नजरों में वह व्यक्ति भ्रष्ट है, जो चारित्र से स्खलित हो गया है । लेकिन महावीर साधना-मार्ग के शिखर-पुरुष हैं । वे बाह्य-दृष्टि पर उतना ध्यान नहीं देते हैं । उनकी नजरों में वह व्यक्ति और अधिक पतित है जो दर्शन से स्खलित हो गया है ।

जैन-धर्म इस बात को खुल्लम-खुल्ला स्वीकार करता है कि सम्यग्-दृष्टि के अभाव में जो कुछ होगा, कर्म-बन्धन का कारण बनेगा। वहीं सम्यग्-दृष्टि से मनुष्य द्वारा किया जाने वाला उपभोग, कर्म-निर्जरा में सहायक होगा । यही कारण है कि एक व्यक्ति किसी कर्म को करते-करते निर्लिप्त हो जाता है, वहीं दूसरा व्यक्ति उसी कर्म के सहारे नीचे धंसता जाता है ।

सम्यग्-दर्शन का सहारा देकर, महावीर हमें बैसाखी से मुक्ति दिला रहे हैं । किसी का सहारा लेकर चलना, जीवन की पंगुता है । अपनी आँखें खोलकर, मार्ग का निरीक्षण कर, चलना ही 'चलना' कहलायेगा, चर्या कहलाएगी । वैसे सत्य पथ तक पहुँचने के लिए अनुसरण किया जाना चाहिए, लेकिन अन्धानुसरण नहीं । अनुसरण के मार्ग में व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर, अन्य मार्ग का चयन करने में स्वतंत्र रहता है, लेकिन अन्धानुकरण में किसी अन्य मार्ग की कल्पना भी नहीं कर पाता।

सम्यक्त्व के अभाव में व्यक्ति बाहर से तो नग्न हो जाएगा, लेकिन भीतर अपने को आवरण में समेटे रखेगा । बाहर से भभूत रमा लेगा, लेकिन अन्तर में उस मार्ग के प्रति तिल-भर भी श्रद्धा नहीं होगी । मन्दिर में जाने के बाद भी, मन के मन्दिर में कहीं परमात्मा की छाया तक नहीं होगी । शिवालय में जाकर वह घंटनाद भले ही कर ले, लेकिन स्वयं न शिव होगा, न जीवन में शिवत्व ।

सम्यग्-दर्शन पहला कार्य तो यह करता है कि व्यक्ति को पूर्वाग्रह से मुक्त करता है । सुनी-सुनायी बातें तो दूर, अगर कोई व्यक्ति शास्त्र का भी आग्रह करता है, तो वह सम्यग्-दर्शन से दूर है। सत्य का आग्रह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं, सत्य को ग्रहण किया जाना चाहिए। सत्य-स्वीकार ही सम्यक्त्व है।

दर्शन, साधना-वृक्ष का बीज है। जैसा बीज होगा, वैसे ही पत्ते और फल-फूल होंगे। क्या वह वृक्ष कभी मधुर फल दे पाएगा, जिसकी जड़ों में कड़वाहट हो ? जिसका उत्स ही अशुभ है, उसका समापन तो अशुभ होगा ही। शुभ परिणाम के लिए शुरुआत का शुभ होना जरूरी है। एक बात स्पष्ट है कि दूषित नजरें, दूसरों में सदा दोष ही ढूँढती हैं और पवित्र नजरें पवित्रता। बगीचे में एक साथ बैठे युवक-युवती किसी को भाई-बहिन नजर आते हैं, किसी को पति-पत्नी। वे कौन हैं यह बात गौण है। सवाल हमारी नजरों का है। लोगों की दृष्टि इतनी निम्न-स्तरीय होती है कि किसी भली महिला को भी, कभी किसी के साथ देखकर उसके चारित्र पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। कहते हैं ना कि गिद्ध आसमान में कितना भी ऊँचा क्यों न पहुँच जाये, वह धरती पर तो माँस ही ढूँढेगा। जैसी नजर होती है, नजारा वैसा ही नजर आता है। कोई मन्दिर में जाकर भी रूपसियों पर ताक-झाँक करता है और कोई बाजार में भी परमात्मा को ढूँढ लेता है। आखिर बिल्ली मन्दिर में जाकर भी तो चूहे ही खोजेगी।

ऐसा ही हुआ। एक बिल्ली किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेकर वापस अपने देश पहुँची। पत्रकारों ने पूछा, सम्मेलन में क्या-क्या हुआ ? बिल्ली बोली, वहाँ चर्चाएँ तो बहुत हुईं पर मैं कुछ सुन न पायी। पत्रकारों ने कहा, जब सुना ही नहीं तो वहाँ जाने का मतलब क्या हुआ ? क्या आप उस समय सम्मेलन में नहीं थीं ? बिल्ली ने अपना सिर खुजलाते हुए कहा– थी तो सही पर मेरा ध्यान वहाँ की महारानी की कुर्सी के नीचे केन्द्रित था।

पत्रकारों ने पूछा, क्यों ? क्या वहाँ सम्मेलन से ज्यादा महत्वपूर्ण चीज थी ? बिल्ली ने मुस्कुराते हुए कहा– जी ! वहाँ एक चूहा बैठा था।

इसीलिए महावीर सम्यग्-दृष्टि पर अधिक जोर देते हैं। आत्म-साधना के मार्ग में तो यह सर्वप्रथम आवश्यक है। सम्यग्-दर्शन चेतना में विहार है। पर से मुक्ति, स्व में संतुष्टि, इसी का नाम ही तो है सम्यग्-दृष्टि।

महावीर जिसे सम्यग्-दर्शन कहते हैं, बुद्ध उसी को सम्यक् श्रद्धा कहते हैं और गीता के कृष्ण उसी को प्रणिपात कहते हैं। वैसे सम्यग्दर्शन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का सीधा-सा अर्थ हुआ–'एक्सेप्ट बाई सेल्फ' सत्य को स्वीकार करना। ज्ञान और चारित्र को सम्यग् करने के लिए, ऐसा होना आवश्यक भी है। ऐसा होने पर अन्धानुकरण की बजाय अनुसन्धान होगा और जिन-दर्शन, अन्धानुकरण नहीं खोज का मार्ग है। यहाँ जितनी खोज की जायेगी, तथ्य उघड़ते जायेंगे।

मात्र वेश-परिवर्तन या शास्त्रीय ज्ञान से जीवन-परिवर्तन नहीं हो सकता। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से है, चारित्र का सम्बन्ध शरीर से है जबकि दर्शन का सम्बन्ध हृदय से है। बिना हृदय के शरीर और बुद्धि किस काम के ? वहाँ जो कुछ होगा, विश्वास हो सकता है, श्रद्धा नहीं हो सकती। बच्चे को परखनली में पैदा करना अलग बात है और नौ माह गर्भ का भार वहन कर बच्चे को पैदा करना अलग बात है। विश्वास का सम्बन्ध देह से है और श्रद्धा का दिल से। महावीर दिल की भाषा में बोल रहे हैं। वे हृदय से हृदय के तार जोड़कर व्यक्ति को हार्दिक बना रहे हैं। आखिर सृष्टि के सम्पूर्ण अस्तित्व को आत्मसात् करना ही तो सम्यग्दर्शन है।

अस्तित्व में जहाँ-जहाँ सत्य की सम्भावनाएँ हैं, वहाँ-वहाँ गहरे तक उतरना, सत्य के करीब पहुँचना है। कुछ तथ्य शास्त्रों से समझे जाते हैं, कुछ बातें गुरु से जानी जाती हैं, लेकिन यहाँ कुछ ऐसा भी है जो शास्त्र या गुरु से नहीं, अपने आप से जाना जाता है। मैं कौन हूँ–इसका जवाब गुरु या शास्त्र नहीं दे पाएँगे। अगर देंगे तो भी यह उधार होगा, यहाँ श्रद्धा नहीं विश्वास होगा। विश्वास टूट भी सकता है लेकिन श्रद्धा कभी टूट नहीं सकती। इसलिए मैं कौन हूँ का जवाब भी स्वयं से पूछें। महावीर जिस सत्य के अनुसन्धान की बात कर रहें, वह सत्य बाहर नहीं भीतर है। इसलिए उचित यह होगा कि हम शास्त्रों की बजाय अपने-आप में ढूँढें, अपने अस्तित्व को।

इस अनुसंधान को भले ही महावीर ने दर्शन कहा हो, बुद्ध ने श्रद्धा और शंकर ने श्रवण कहा हो, आखिर तीनों ही सत्य पर विश्वास से पूर्व उसका अहसास कराना चाहते हैं। ज्ञान से पूर्व, दर्शन-विशुद्धि हो। बिना दर्शन के, ज्ञान सम्यग् नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे बिना शक्कर के दूध मीठा नहीं होता।

दर्शन विशुद्धि के पश्चात् महावीर चाहते हैं ज्ञान भी निर्मल हो, क्योंकि ज्ञान के अभाव में चारित्र नहीं सधता। सत्य को जाने बिना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य का आचरण कैसा ! ज्ञान ही तो वह आधार है जिससे व्यक्ति स्वयं में, स्वयमेव प्रवेश कर जाता है। इसलिए दुनिया में गुरु का सहारा लिया जाता है, ताकि हम ज्ञान हासिल कर सकें। गुरु चारित्र नहीं देता, गुरु ज्ञान देता है। वह संदेश, जिससे वेश परिवर्तन नहीं जीवन परिवर्तन हो जाये। इसलिए ज्ञान और गुरु का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। केवल चोटी सौंपकर किसी को गुरु नहीं बनाया जाता है। चोटी हर कोई उतार सकता है, लेकिन अपनी प्रज्ञा से दूसरों की प्रज्ञा जाग्रत करना कठिन कार्य है। गुरु वह है जो ऐसा करने में सिद्धहस्त है। वह प्रकाशवाही बनकर शिष्य को मार्ग दिखलाता है।

गुरु ज्ञान का दाता होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि जो शास्त्रों का अभ्यास करवाए वह गुरु है। साधना के मार्ग में गुरु वह है जो स्वयं के अस्तित्व का बोध करवाए। जो अपना दीप भी जलाए और औरों का भी। महावीर जिस ज्ञान की चर्चा कर रहे हैं, साधना के मार्ग में वह आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान के अभाव में, मुनि का मुनित्व ही त्रिशंकु में लटकता रह जाएगा। आनन्दघन ने महावीर के भावों को काफी ईमानदारी से पेश किंया है–आतमज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्य लिंगी रे।

महावीर कहते हैं' 'नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा' – ज्ञान के अभाव में चारित्र गुण नहीं होता। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है और जब तक आत्मा अपने स्वभाव को उजागर नहीं करेगी, तब तक अपना बोध भी कैसे कर सकेगी। महावीर ने तो यहाँ तक कहा है 'जे आया से विन्नाणी, जे विन्नाणी से आया' जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है, वही आत्मा है। एक अज्ञानी, वर्षों तक चारित्र का अनुपालन कर कर्मों का क्षय करता है वहीं, एक ज्ञानी क्षण भर में उन्हीं कर्मों का क्षय कर देता है। ज्ञानी और अज्ञानी के चारित्र पालन में यही फर्क है कि ज्ञानी चाबी से ताले को खोलता है और अज्ञानी हथौड़े से। अज्ञानी मासक्षमण करके भी क्षमा में नहीं जी सकता, वहीं ज्ञानी बिना व्रत, उपवास के ही, क्षमा और समता में जीवन यापन करता है। मासक्षमण चारित्र नहीं है, चारित्र क्षमा है। मासक्षमण भी क्षमा में, समता में जीने का अभियान है, अगर यह अभियान सफल नहीं होता है तो व्रत, उपवास, सभी कुछ साधना मार्ग में मात्र देह दंडन तक सीमित हो जाएँगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए महावीर ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र का समवेत साधना मार्ग दिया। ज्ञान जीवन के अनुभवों का निचोड़ है। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता है, वैसे-वैसे ज्ञान परिपक्व होता है। यह तो सुनी-सुनायी बात है कि अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है। ज्ञान वह है, जब व्यक्ति वास्तविकता को स्वीकार करे। अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है, यह तथ्य हमारे लिए सत्य तब होगा, जब हम स्वयं इसका अनुभव करेंगे। किसी बच्चे को दस दफा कह दिया जाये कि अग्नि को मत छूना, क्योंकि इससे हाथ जल जायेगा, संभव है वह विश्वास न करे। पर एक दफा उसे अग्नि का स्पर्श कराकर भान करा दिया जाये तो, वह बिना बताये ही समझ जायेगा कि अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है।

जैसे-जैसे ज्ञान परिपक्व होता है, वैसे-वैसे चारित्र गुण सधता है। लालटेन पर भला कभी प्रकाश की चिप्पी चिपकानी पड़ती है। ज्ञान तो ज्योति है। मिटाओ, इससे अनाचरण के अंधकार को। गुजारो इसे अनुभव के दायरे से। न तो किताबें मोक्ष दे सकती हैं और न ज्ञान। ज्ञान पैदा करें अन्तर्मन से। किताबी ज्ञान तो केवल मानचित्र है। इससे यह तो ज्ञान हो जायेगा कि कहाँ हिमालय है और कहाँ रामेश्वरम्, पर हिमालयी बर्फीली हवाओं का आनंद और सागर की लहरों की खुशियाँ, किताबें नहीं दे सकतीं।

महावीर, बुद्ध, ईसा, इन सबने ज्ञान किताबों से नहीं पाया, स्वयं से स्वयं का ज्ञान पाया। इसलिए वे अपने गुरु स्वयं बने। वे पंडित कम, प्रज्ञा पुरुष अधिक थे। पांडित्य तो हर किसी के पास हो सकता है, लेकिन प्रज्ञा हर किसी की नहीं सध सकती। पांडित्य अहंकार का पोषण करेगा, वहीं प्रकृष्ट प्रज्ञा ऋजुता को अपनायेगी। बाहर का ज्ञान तो उस झूठी मुस्कुराहट जैसा है जो भीतर रोष होते हुए बाहर खुशी जाहिर करता है।

आज का सूत्र, उस रत्नत्रय को प्रस्तुत कर रहा है जिसे महावीर ने मोक्ष और निर्वाण का साधन माना है। यात्रा का प्रारम्भ श्रद्धा से हो रहा है और समापन निर्वाण की भूमि पर। जैसे सागर मंथन कर अमृत निकाला गया था, वैसे ही महावीर ने साधना-मार्ग का मंथन कर रत्नत्रय–दर्शन, ज्ञान, चारित्र निकाला है।

ज्ञान वह ज्योति है, जिसे पाकर व्यक्ति स्वयं तो प्रकाशित होता ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है औरों में भी प्रकाश बाँटता है। वह ज्योतिष्मान् है जो प्रकाशित है, पर वह ज्योति धन्य है जो अनन्त में लीन होने से पूर्व अनेकों में ज्योति का संस्कार कर दे। ज्ञान आत्मसात् कर उसे औरों में बाँटे। बुझे हुए दीपक को धिक्कारने की बजाय, उसे प्रकाशित करने का प्रयास करना चाहिए। वह व्यक्ति प्राप्त विद्या को अक्षुण्ण नहीं रख पायेगा जो मात्र संचय में लगा है, यह तो बाँटने के लिए है। अमृत प्राप्त करना कठिन कार्य नहीं है। देव वह है जो अमृत बाँटता है, जिसने अमृत पाकर दुनिया में अमृत न बाँटा, वह भला कैसा देव ! उसके लिए तो अमृत भी पानी बन जाएगा। इस मामले में महावीर सदा उदार रहे। पर वे उन लोगों में से नहीं है जो मात्र 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, आचरहिं ते नर न घनेरे' जैसी उक्ति को चरितार्थ करते हों। महावीर ने उपदेश तब दिया, जब सत्य उनके रोम-रोम में समा चुका था। एक बात गौरतलब है कि महावीर तब तक पूर्णतया मौन रहे, जब तक उन्होंने परमज्ञान हासिल नहीं कर लिया, लेकिन सत्य को जब सम्पूर्णतया जान लिया, तब वे औढ़रदानी हो गये। गाँव-गाँव और नगर-नगर में जाकर प्रेम और शांति के मार्ग को प्रशस्त किया।

ज्ञान, मात्र प्राप्त करने के लिए ही नहीं है, अपितु बाँटने के लिए भी है। ज्ञानी ही तो वह गुरु है जो औरों को दिशा निर्देश देता है। महावीर के सभी सूत्र तभी कहे गये हैं, जब उन्होंने परमज्ञान-दर्शन प्राप्त कर लिया था। इसलिए महावीर के सूत्र सत्य को प्रगट करने का प्रयास हैं, मंजिल के लिए संकेत हैं। महावीर की भाषा नकल की भाषा नहीं है, जो कुछ है, मौलिक है।

दर्शन-विशुद्धि के अभाव में प्राप्त ज्ञान और आचरण अनुसरणसा होगा। आचरण-शुद्धि जीवन की अनिवार्यता है, लेकिन वह बोधपूर्वक हो। बोध के अभाव में आचरण विशुद्धि के नाम पर मात्र तपस्याएँ होंगी, देह दण्डन होगा। बाहर से देह भले ही कंकाल हो जाये पर भीतर में वासना और तृष्णा वैसी की वैसी रहेगी। ज्ञान प्राप्त करने के लिए संकल्पवान होने से पूर्व आवश्यक है कि हम भीतर को निर्मल करें। यदि जहर सने घड़े में अमृत भी उंडेला जायेगा तो, जहर बन जाएगा। यदि हम अमृतवाही बनना चाहते हैं तो, जहर से मुक्त होना होगा।

महावीर कह रहे हैं कि बिना दर्शन के ज्ञान नहीं होता, बिना ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के चारित्र नहीं सधता। ज्ञान केवल ऊपर-ऊपर का न हो। जो ऊपर-ऊपर तैरेगा वह तिनके ही पायेगा। जो गहरे में उतरेगा वही हीरे-मोती पाएगा। जैसे सागर में ऊपर-ऊपर तैरने वाला सिवा खारे जल और तिनकों के कुछ प्राप्त नहीं कर पाता, वैसे ही केवल किताबों में रहने वाला जीवन की भाषा नहीं सीख पाता। किताबें हमें पंडित बना सकती हैं, लेकिन जीवन की वास्तविकता मात्र पांडित्य या तर्क-वितर्क में नहीं है, वह तो जीवन की निर्मलता में है। पुस्तकें प्रेम-सूत्र बता सकती हैं, लेकिन प्रेम पैदा नहीं कर सकती। परमात्मा कभी पुस्तकों में पैदा नहीं हुआ है, उसे पैदा करने के लिए प्रेम की माटी चाहिए–

प्रेम की माटी में
परमात्मा का फूल खिलता है,
और प्रेम,
डेल कार्नेगी की
किताब में
नहीं मिलता है।
जो घर फूँकता है,
साथ हो जाता है,
और गाता है
खुद में रमण करता है,
खुदा हो जाता है,
कबीर की साखी
कोई और नहीं,
खुद कबीरा है,
वही मंसूर है
वही मीरा है।

महावीर के यहाँ जो कुछ सीखा कहा जा रहा है, सब का सम्बन्ध अन्तर्-जगत से है।

एम.ए. तो हर कोई उत्तीर्ण कर सकता है, लेकिन जीवन की वास्तविकता एम ए एन मैन होने में है। यदि कोई, शैक्षणिक उपाधियाँ पाकर, मानव नहीं बन पाया तो उसकी शिक्षा अपूर्ण कहलायेगी। बिना चारित्र का ज्ञान शून्य है और ज्ञान के अभाव में चारित्र शून्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षा-दीक्षा दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मात्र विद्यालयीन शिक्षण को सम्यग्ज्ञान का दर्जा नहीं दिया जा सकता है, वहाँ तो जो कुछ रटा जायेगा बस मस्तिष्क में वही होगा।

मैंने सुना है, एक छात्र किसी पुस्तक विक्रेता से 'रेपीडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स' खरीदने गया। पुस्तक दुकान में उपलब्ध नहीं थी, अतः विक्रेता ने कह दिया, 'आउट ऑफ स्टॉक।' छात्र को यह वाक्य-विन्यास काफी सुहाया। उसने सोचा, मैं भी किसी अनुपलब्ध वस्तु के लिए यही कहूँगा।

एक दिन वह छात्र घर की सीढ़ियों पर बैठा था, किसी ने आकर पूछा—घर में डैडी हैं। छात्र ने वही रटा-रटाया जवाब दिया, 'आउट आफ स्टॉक।'

यह आधा-अधूरा और अधकचरा ज्ञान है। ज्ञान हो सागर-सा गम्भीर। परिपक्व ज्ञान की स्थिति के लिए ही तो श्रीकृष्ण ने कहा था 'ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेर्जुनः।'

महावीर जिस ज्ञान और चारित्र की चर्चा कर रहे हैं, उसका उद्देश्य जीवन की असलियत से पहचान कराना है। अगर मात्र भौतिक सुख-सुविधाएँ पाने के लिए ही हम डिग्रियों का भार ढोते रहे तो, ये डिग्रियाँ अंततः हमारे लिए वैसे ही भारभूत होंगी, जैसे गधे के लिए चंदन का लादा। ज्ञान, न किताब है न कण्ठस्थ। ज्ञान तो जीवन है। जब जीवन में आत्मसात हो जाये ज्ञान, तो जो कुछ होगा, वह अपने अस्तित्व के लिए होगा।

मैंने जो चर्चा की है—दर्शन, ज्ञान और चारित्र की, यह महावीर का मूल मार्ग है। महावीर, इस साधना मार्ग को मोक्ष-मार्ग कहते हैं और मोक्ष इस मार्ग का मार्ग फल है। दर्शन का सम्बन्ध हृदय से है, ज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और चारित्र का सम्बन्ध हमारे आचार-व्यवहार से। एक बात बहुत साफ कह देना चाहता हूँ कि यदि महावीर के मार्ग से, उनके मार्गफल को प्राप्त करना चाहते हो तो, यात्रा को क्रमशः पड़ाव देने होंगे। दर्शन इस यात्रा पथ का, पहला मील का पत्थर है, ज्ञान दूसरा और चारित्र तीसरा। जब तक जीवन में हृदय-शुद्धि नहीं, मानसिक पवित्रता नहीं तब तक आचार-व्यवहार में लाया गया संयम, हमें चारित्रिकता की प्रतिष्ठा जरूर दिला सकता है, किन्तु आत्मा में आध्यात्मिक परिणति नहीं आ पायेगी। जब तक हमारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीतर अनर्गलताएँ रहेंगी, अशुभ का बसेरा रहेगा तब तक जीवन में आत्मिक प्रभात की सम्भावना बहुत कम रहेगी । श्री चन्द्रप्रभजी की एक चर्चित कविता है–

तप रहा है, वह तपस्वी,
देख अलि ! उस वृक्ष नीचे ।
अस्थि पंजर हो गया, पर
राग के आलाप खींचे ।।
जिंदगी उसने लगायी,
जिंदगी को साधने में ।
पूछना उससे मिला क्या
यों स्वयं को मारने में ?
सूख सकती अस्थियाँ पर
सूख सकता अहं किसका ।
देह को जर्जर बनाना,
धर्म कैसा देवता का ।।
रंग डाले वस्त्र गहरे,
पर रंगा क्या हृदय तेरा ।
देखती हूँ वासना का
आज भी उसमें बसेरा ।।
हो कहाँ से फिर सबेरा ।।

जब तक हृदय में वासना है; किंतु व्यवहार में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा, भीतर में राग-द्वेष की ग्रंथियाँ हैं और बाहर में उपवासों का सिलसिला, तब तक जीवन का बाह्याभयन्तर खुद एक विरोधाभास है । अध्यात्म हंस नीति में विश्वास रखता है । दूध का दूध और पानी का पानी । जिस दूधिये के पास पानी मिला दूध है वह बाजार में तो बिक सकता है, दूध की प्रतिष्ठा पा सकता है, लेकिन हंस के काम नहीं आ सकता। निर्वाण हमेशा हंसों को मिलता है, बगुलों को नहीं । अपने भीतर के हंस को जगाओ, बगुला नीति कारगर नहीं हो पायेगी । मुखौटे यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सार्थक नहीं हो सकेंगे । संसार-मुक्ति और आत्म-उपलब्धि के लिए पहले, खोलें हृदय की दृष्टि । शुद्ध हृदय से जो अन्तरज्ञान में जीता है उसीका चारित्र सम्यक् है । महावीर कहते हैं, चारित्र के बिना मोक्ष/निर्वाण नहीं होता, लेकिन वे यह भी स्पष्ट संकेत दे रहे हैं कि बिना ज्ञान के चारित्र निष्पन्न नहीं होता और ज्ञान तब तक अपनी सार्थकता को आत्मसात नहीं कर पायेगा जब तक जीवन के द्वार पर दर्शन की दस्तक नहीं होगी । दर्शन, ज्ञान और चारित्र की समवेत साधना का नाम ही मोक्ष मार्ग है ।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमात्मा : स्वभाव सिद्ध अधिकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"धरती पर प्रकाश तो कई दफे अवतरित हुआ है, फैला है। लेकिन अंधेरे में जीने वाले लोगों ने उसका अनादर ही किया है। कभी प्रकाश को शूली पर लटकाया गया, कभी कानों में कीलें ठोंकी गईं, कभी जहर का प्याला पीने को मजबूर किया गया और कभी गोली से उड़ा दिया गया। दुःख में जीने वाले लोग कभी आनंद का स्वागत नहीं कर पाते।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धत्व हमारा स्वभाव सिद्ध अधिकार है। न केवल अधिकार है, स्वभाव भी है। आत्मा न मन है, न वचन है, न काया है ; आत्मा सिर्फ 'आत्मा' है। निरालम्ब है, निष्कलुष है, निर्दोष है; मोह-रहित, भयमुक्त, वीतराग है। क्रोध, वैमनस्य, घृणा ये सब आत्मा के व्यक्तित्व नहीं हैं। राग और द्वेष ये सब आरोपित हैं। खौलता हुआ पानी हाथ जला सकता है, लेकिन अग्नि को नहीं जला सकता। पानी का स्वभाव उष्णता नहीं, शीतलता है। चाहे जितना खौलता पानी अग्नि में डाला जाये, वह अग्नि को बुझाने में ही सहायक होगा, जलाने में नहीं। चाहे अग्नि में ख़ौलता पानी डाला जाये या ठण्डा पानी, दोनों ही अग्नि को शान्त ही करेंगे।

यहां जल का स्वभाव शीतलता है, गरमाहट आरोपित है। शीतलता वास्तव में निर्भयता, वीतरागता, निष्कलुषता की प्रतीक है, जबकि गरमाहट क्रोध, वैमनस्य, सांसारिकता आदि की प्रतीक है।

सिद्धत्व का अर्थ भगवत्ता से है, हमारे परमात्म-स्वरूप से है। बहुत से लोग ऐसे हुए, जिन्होंने परमात्मा की खोज के लिये सारे संसार में तलाश की, लेकिन उन्हें हताश होना पड़ा। जो कभी खोया हो, उसे खोजा जाता है। बगल में बच्चे को रखकर, नगर भर में उसे ढूंढना बेकार की परेशानी नहीं तो और क्या है ? जिसे खोया ही नहीं, उसे खोजोगे कैसे ? यह खोजने की यात्रा तो ठीक वैसे ही हुई, जैसे मृग कस्तूरी को ढूंढने के लिये चारों ओर भटकता है, लेकिन अन्ततः कस्तूरी वहीं मिलती है, जहां से उसने खोजना प्रारम्भ किया था। परमात्मा भी आखिर वहीं मिलेगा जहां हम स्वयं हैं, जहां से हमने यात्रा प्रारम्भ की।

परमात्मा की खोज कम करनी है, केवल याद भर करना है। ऐसा नहीं है कि हमारे भीतर केवल आत्मा ही हो, परमात्मा भी है। हकीकत में तो आत्मा ही परमात्मा है। पर जिसे सदा से पाया है उसकी याद नहीं आया करती। किसी व्यक्ति का महत्त्व तब स्वीकार किया जाता है, जब वह दूर हो जाता है। लोग जीते-जी मां-बाप की सेवा नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेंगे। मरने के बाद उनकी याद में आँसू बहायेंगे। जीते-जी माता-पिता को रुलाते हैं, लेकिन मरने के बाद स्वयं रोते हैं।

कई दफा सोचा करता हूँ, कि जब परमात्मा इंसान के भीतर है तो उसे याद क्यों नहीं आती। हकीकत में स्मृति वियोग होने पर आती है। पत्नी को पति के मूल्य का तब तक अहसास नहीं होता जब तक वह उससे दूर न हट जाये।

पुत्र विदेश में रहता है। उसकी याद में माँ आँसू बहाती रहती है, लाखों शुभकामनाएँ करती रहती हैं। लेकिन मिलन होने पर स्थिति सामान्य हो जाती है। इसलिए जो अहसास संयोग में है, उससे भी ज्यादा वियोग में होता है, क्योंकि यहां एक दूजे की स्मृति है, याद है।

मछली सागर में रहती है, वर्षों-वर्षों से रहती है, लेकिन उसकी नजरों में पानी की कीमत का अहसास नहीं है। हमारे जीवन के लिए जैसे ऑक्सीजन आवश्यक है, उसी प्रकार मछली के लिए पानी आवश्यक है। अगर ऑक्सीजन समाप्त हो जाये तो इंसान का अस्तित्व नहीं रहेगा। लेकिन मनुष्य को ऑक्सीजन के महत्व का अहसास नहीं है और मछली को पानी का। क्योंकि दोनों ने जन्म से पाया है, इसलिए इसका महत्व नहीं समझ पाये। हमेशा अमृत पीने से, अमृत भी पानी बन जाता है। मनुष्य अमृत के लिये इसलिये तरस रहा है, क्योंकि वह उसके पास नहीं है और देवताओं के लिए अमृत की कोई कीमत नहीं है, क्योंकि वह तो उन्हें उपलब्ध है।

जिस ताजमहल को देखने के लिए दुनिया भर के लोग आगरा पहुँचते हैं, कभी आगरा वासियों को पूछो, बहुत- से लोग ऐसे मिल जायेंगे जिन्होंने कभी ताजमहल ही न देखा हो। वे कहते हैं ताजमहल क्या है, मकबरा है। लोग हरिद्वार और वाराणसी में गंगा-स्नान करने जाते हैं और वहां रहने वाले लोग अपने ही घर में, बाथरूम में स्नान करते हैं। मनुष्य ऑक्सीजन की कीमत तब आंक पायेगा जब उसके अभाव में वह तड़फे। मछली पानी की कीमत तब आंक पायेगी जब उसे पानी से अलग कर दिया जाये। जैसे जीवन के लिए ऑक्सीजन, मछली के लिये पानी, उसके अस्तित्व से जुड़ा हुआ है, वैसे ही परमात्मा हमारे अस्तित्व से जुड़ा है।

परमात्मा का कभी वियोग नहीं हो सकता। जहां योग होता है, वहां वियोग होता है, जहां वियोग होता है, वहां योग होता है। परमात्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का कभी वियोग नहीं हुआ, इसलिये योग भी कैसे होगा । इसलिए परमात्मा को खोजना नहीं है, मात्र बोध का रूपान्तरण करना है । सिर्फ अन्तर की आंख खोलकर स्थिति को देखना है, समझना है । यह दर्शन ही, समझ की क्रान्ति होगी ।

देखा और खोजा उसे जाता है, जो बाहर हो । जो बाहर है ही नहीं, उसे बाहर कैसे ढूंढा जाये ? क्या आत्मा,आत्मा को ढूंढेगी ? क्या व्यक्ति अपने आप पर शंका करेगा ? लोग आत्मा पर शंका करते हैं । हकीकत में तो जो शंका कर रहा है, वही आत्मा है । इससे अधिक हास्यास्पद क्या होगा कि 'आत्मा' अपने आप पर शंकास्पद है।

परमात्मा कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर है, हम स्वयं हैं, पर बाहर इसलिए ढूंढ रहे हैं, क्योंकि इन्द्रियां बाहर खुलती हैं । आंख दूसरे को देखती है, कान दूसरे को सुनते हैं, नाक दूसरे की गंध लेती है, सब कुछ बाहर से जुड़ा है, लेकिन अपने आप को ही भुला बैठे, तो बाहर क्या करोगे ? आंख सब कुछ देख लेती है, लेकिन अपने आप को नहीं देख पाती, कान सब कुछ सुन लेता है लेकिन अपनी, अन्तर् की आवाज अनसुनी रह जाती है। अगर परमात्मा को खोजना और पाना भी चाहते हो तो भीतर की यात्रा करनी होगी । इसमें आंख, कान, नाक, गला सहायक नहीं होंगे । यह यात्रा अतीन्द्रिय होती है । अन्तर् के तत्त्व का दर्शन कर पायेगी, अन्तर की आंख । जिसे शिव का तीसरा नेत्र कहा गया है, महावीर ने प्रज्ञा का नेत्र कहा ।

प्रकृति बाहर है, परमात्मा भीतर है । आखिर जो जहां होगा उसे वहीं तलाशा जायेगा । प्रकृति बाहर है, उसकी तलाश बाहर करो । परमात्मा भीतर है, उसे भीतर ढूंढो । संसार बाहर है, उसे बाहर ढूंढो। समाधि भीतर है, उसे भीतर देखो । लोग विपरीत चलते हैं, अन्तर में संसार को बसाते हैं, बाहर समाधि और सिद्धत्व खोजते हैं । जो जहां है उसे वहीं देखना चाहिये । सुई अगर कमरे में खोई है, तो वहीं मिलेगी चाहे वहां अंधेरा भी क्यों न हो । कमरे में खोई हुई सुई, कभी छत पर नहीं मिलेगी । उल्टी यात्रा करने से क्या फायदा, जाना है बम्बई और बैठ रहे हो 'कालका मेल' में, गतंव्य आखिर कैसे मिल पायेगा।

पर से जुड़ने के लिये आधार चाहिये । जैसे बिना इन्द्रियों के प्रकृति से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता, वैसे ही इन्द्रियातीत हुए बिना परमात्मा से सम्बन्ध नहीं किया जा सकता । दूसरे से जुड़ने के लिये आधार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये, लेकिन अपने आप से जुड़ने के लिये ! वहां किसी आधार की आवश्यकता नहीं है । कमरे में बैठे हो, अंधेरा है, अगर किसी भी वस्तु को ढूंढना हो तो प्रकाश की आवश्यकता होगी, अगर अपने आप को ढूंढना हो तो ? अन्धेरे में भी स्वयं का पता रहता है कि मैं हूँ ।

आंख बाहर खुलती है , इसलिये हम उसे भी बाहर ढूंढ रहे हैं, जो बाहर है ही नहीं । छोटे दुःख को मिटाने की तरकीब बड़ा दुःख है, जैसे कोई बच्चा फोड़े के दर्द से कराह रहा है, इसी बीच चलते हुए गिर जाये, हाथ की हड्डी टूट जाये तो बच्चा फोड़े के दर्द को भूल जायेगा और हड्डी का दर्द उस पर प्रभावी हो जायेगा । ठीक ऐसे ही चेतन पर जड़ प्रभावित है । आत्मा पर पुद्गल प्रभावित है । चले थे परमात्मा को ढूंढने, फोड़े का इलाज कराने, संसार में फंस गये, परमात्मा को भूल गये, हड्डी टूट गई, फोड़े को भूल गये ।

इंसान बाहर की दौड़ में लगा है । कितने लोग ऐसे हैं जो परमात्मा को या अपने आप को पाना चाहते हैं । कहने में भले ही कह देंगे कि हम परमात्मा का दर्शन करना चाहते हैं , लेकिन मायाजाल के सामने परमात्मा भी गौण हो जाता है । एक ओर रुपये मिलते हैं, दूसरी ओर परमात्मा मिलता हो, तो लोग लाख की ओर लपकेंगे ,परमात्मा की ओर नहीं । भले ही जिन्दगी भर कहते रहे, मुझे परमात्मा का दर्शन करना है, लेकिन जब किसी ने कहा, चलो परमात्मा दिखा दूँ तो कहने लगे, ठहरो, लड़का बाहर गया है, वह आ जाये, उसे दुकान संभलवा कर चलता हूँ । आसक्ति जड़ की, लगाव पुदगल का, सम्मोहन संसार का, चेतना का सब कुछ तो जड़ के लिए न्यौछावर कर बैठे हो ।

बाहर की दौड़ बाहर के उपकरणों से तादात्म्य बनाती है, अन्तर् की दौड़ अन्तर् से । तलाश कर रहे हो अन्तर् की और दौड़ रहे हो बाहर। ठीक उल्टी यात्रा । और तो और व्यक्ति अपनी शक्ल भी आइने में देखकर पहचान पाता है ? अपनी पहचान का भी माध्यम कोई और? दूसरे के द्वारा स्वयं को अच्छा कहे जाने पर, स्वयं को अच्छा समझ लेते हैं । स्वयं का परिचय भी दूसरों पर आधारित हो गया है ।

मैंने सुना है, पोपट राम अपने दो दोस्तों के साथ तीर्थयात्रा पर निकला। नाम की तीर्थयात्रा थी, निकला तो घूमने-फिरने ही था । एक दिन चलते-चलते जब कोई गाँव न आया, सांझ ढल गई तो जंगल में ही रात्रि विश्राम करना पड़ा । तीनों ने निर्णय किया कि प्रत्येक तीन-तीन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घंटे पहरा देगा, दो सोयेंगे, एक जगेगा। पोपट राम के मित्रों में एक नाई था, दूसरा गंजा। सबसे पहले नाई पहरा देने के लिये खड़ा हुआ, शेष दोनों सो गये। नाई अकेला खड़ा-खड़ा तंग आ गया-और कुछ न सूझा। वह पोपट राम के पास गया और उसका सिर मुंडन करने लगा।

जब तीन घण्टे बीत गये, नाई ने पारी बदलने के लिये पोपट राम को उठाया। उसने सिर पर हाथ फेरा, बोलने लगा, मूर्ख तू ये क्या कर रहा है तुमने मेरी जगह उस गंजे को उठा दिया है।

लोग अपनी पहचान भी बाहर से कर रहे हैं, औरों से कर रहे हैं और इस बाहर की खोज में परमात्मा को भी बाहर ही खोजने लगे हैं। अमृत भीतर है, खोज बाहर चल रही है। भीतर की तो स्मृति भी नहीं है। दशों दिशाओं की तो सभी चर्चा किया करते हैं, लेकिन ग्यारहवीं की चर्चा कोई नहीं करता। मेरा इशारा इसी दिशा की ओर है। इसे अपनी दिशा कहें। कोई कहता है परमात्मा उत्तर में है, कोई कहता है दक्षिण में है, कोई कहता है पूर्व या पश्चिम में है; हकीकत में तो परमात्मा वहाँ है, जहाँ सभी दिशाएँ गौण हो जाती हैं, वह है अन्तर्-दिशा। जो जिस दिशा में है उसकी खोज उधर ही होनी चाहिए। गंगा का मूल उत्स खोजने के लिए, अगर व्यक्ति दक्षिण की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है तो उसकी खोज पूरी न होगी। गंगा का उत्स उत्तर में है, गंगोत्री में है। अगर अपनी जीवन-धार का उत्स खोजना चाहते हो, तो वह तुम्हारे भीतर है, हमारी गंगोत्री हमारे भीतर है, जहाँ से बही है जीवन की धारा। माता-पिता से हमें जन्म मिला है, जीवन नहीं। चाहे सौ नाले गंगा में आकर मिल जायें, लेकिन वे गंगा के आदि स्रोत नहीं हो सकते। गंगा का आदि स्रोत तो गोमुख ही कहलायेगा।

आज हम पूरे शरीर में हैं। इससे पहले छोटे शरीर में थे। उससे पहले और भी छोटे शरीर में थे। जब माँ के पेट में थे तब और भी छोटे थे। कभी ऐसा भी था जब माँ के पेट में मात्र अणु थे। अणु से पूर्व के इतिहास को जानना चाहोगे ? अणु से पूर्व भी हमारा अस्तित्व था। हम एक अदृश्य आत्मा थे। ये जितना, जो कुछ दिखाई दे रहा है यह अणु और परमाणु की विराटता है। कल्पना की जा सकती है बिना बीज के क्या वृक्ष का अस्तित्व हो पायेगा ? अगर अपने जीवन के अतीत की ओर झांकोंगे, तो स्वयं को छोटे से छोटा, अन्त में अदृश्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाओगे और मूल स्रोत तो आखिर हम ही हैं और जिस दिन यह अणु और अदृश्य उड़ जायेगा, उस दिन वह सब कुछ, जो आज देख रहे हो एक पिंजरा भर होगा, खाली पिंजरा जिसे मुर्दा कहकर फूंक दिया जायेगा, दफना दिया जायेगा।

लोग आत्मा की पहचान नहीं कर पाते और सारी जिन्दगी संसार के लिए खो देते हैं और जैसे खुद हैं वैस ही अपना परमात्मा बना लेते हैं। जो शाकाहारी है, उसने अपना ईश्वर शाकाहारी बना लिया और जो मांसाहारी है, उसने अपना ईश्वर मांसाहारी बना लिया। परमात्मा पर भी अपनी आकृति का आरोपण कर दिया। अगर संसार भर की जितनी मूर्तियाँ हैं, जितने ईश्वर के भेद-विभेद हैं उनका निर्माण कार्य पशु-पक्षियों के हाथ में सौप दिया जाता है तो जितने भगवान के चेहरे होते हैं सब पशु-पक्षियों से मिलते जुलते होते। पता नहीं ईश्वर ने इंसान को बनाया या नहीं, लेकिन इंसान ने तो अपना ईश्वर बना ही लिया। अपने ईश्वर को बाहर निर्मित न करें, अपने बनाये हुए परमात्मा की प्रार्थना न करें, क्योंकि वहाँ सारी-की-सारी प्रार्थनायें संसार की होंगी, अगर करनी है प्रार्थना तो उसकी करो, जिसने तुम्हें बनाया है। अन्यथा, ध्यान में भी बैठोगे तो वहाँ ध्यान में भी परमात्मा नहीं पति आयेगा, अगर माला गिनने बैठोगे तो भगवान नहीं भोग आएंगे।

मैं आबू में था। ध्यान साधना के लिए वहाँ तीन माह की स्थिरता थी, काफी विदेशी लोग भी ध्यान का अभ्यास करने आते थे। एक दिन, इटली का एक जोड़ा हमारे पास बैठा था। दोनों ने कहा, हम इटली में भी रोज आधा घंटा ध्यान करते थे। हम दोनों की सर्विस अलग-अलग स्थानों पर है तथा २०० कि. मी. की दूरी पर है।

मैंने कहा, सो तो ठीक है, पर जरा यह बतायें कि आप दोनों आधे घंटे तक ध्यान में क्या करते हैं ? पत्नी ने अपने पति की ओर इशारा करते हुए कहा, ये मुझे याद करते हैं और मैं इन्हें याद करती हूँ।

इस घटना पर हँसी भी आ सकती है, लेकिन यह एक की नहीं, सबके जीवन की आपबीती है। अब तक हमारी ओर से किया जाने वाला ध्यान योग, ऐसे ही हुआ है। दिखने में लगता है, व्यक्ति परमात्मा का चिन्तन कर रहा है, पर वहाँ परमात्म-चिन्तन के नाम पर पति-पत्नी का चिन्तन चलता है।

परमात्म तत्त्व की खोज आवश्यक है, पर यह खोज बाहर की खोज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं, अपितु भीतर की खोज हो। परमात्म खोज के नाम पर अब तक जितनी यात्राएँ की गयीं, वे सब बाहर की यात्राएँ थीं और परमात्मा तो अन्तर्-जगत में है। या यूं कहें जो ढूँढ रहा है, वही परमात्मा है। परमात्मा द्वारा परमात्मा की खोज की जा रही है। मैंने कहा, परमात्मा द्वारा परमात्मा की खोज, यानि अपने आपकी खोज। इसे खोज भी न कहें, यह तो आत्म-बोध है, आत्म-दर्शन है। कुन्द-कुन्द ने तो ऐसे लोगों के हाथ से निर्वाण का अधिकार ही छीन लिया, जो आत्मबोध और आत्मदर्शन से शून्य हैं। इसलिए मोक्ष पाहुड़ में न परमात्मा की शरण स्वीकार की गयी है, न किसी देवी-देवता की। वहाँ कुन्द-कुन्द कहते हैं, 'अप्पाहू मे शरणं' आत्मा ही मेरा शरण है। इस दुनिया में कोई किसी का शरण भूत नहीं है। कोई किसी का नाथ नहीं है, व्यक्ति स्वयं ही अपना नाथ बनता है।

श्रमण अनाथी, नगर के बाहर उपवन में थे। युवा अवस्था, भरपूर चैतन्य-शक्ति और ऊर्जा का आध्यात्मिक प्रयोग, वर्षों की साधना को घन्टों में पूर्ण कर रहे थे।

एक दिन उपवन में सम्राट् श्रेणिक पहुँचा। मुनि के दमकते चेहरे और उभरते यौवन से श्रेणिक विस्मय-विमुग्ध हो गया। सोचने लगा, यह यौवन, यह सौन्दर्य भोग के लिए है या योग के लिए। संन्यासी होने का अर्थ यह तो नहीं है कि जीवन के साथ ही अन्याय किया जाए। श्रेणिक मुनि के पास पहुँचा, पूछा 'इस तरह युवावस्था में गृह-त्याग कर संन्यास अपनाने की सार्थकता क्या है ? मुनि ! यह यौवन जो वासनाओं के भार से दबा रहना चाहिए तुम उसे क्षीण कर रहे हो।'

मुनि ने कहा, 'नहीं ! मैं ऊर्जा का सदुपयोग कर रहा हूँ। वह व्यक्ति भला साधना की पराकाष्ठा को कैसे छू पायेगा, जो यौवन संसार को सौंपता है और बुढ़ापा परमात्मा को। राजन् ! जितनी ऊर्जा भोग के लिए चाहिए, उससे सौ गुनी ऊर्जा योग के लिए आवश्यक है।'

सम्राट् सकपका गया। पुछने लगा 'मुनिवर ! क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ।'

मुनि के कहा 'अनाथी।'

'अनाथी ! बड़ा विचित्र नाम है। मुनिवर ! अगर इस दुनिया में आपका कोई नाथ न हो तो मैं होने को तैयार हूँ। आप मेरे साथ महलों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में चलें, मैं आपको वे सारी सुविधाएँ दूँगा , जिनकी आपको आवश्यकता होगी ।'

अनाथी मुस्कुराये और बोले, 'राजन् ! जो स्वयं अपना नाथ नहीं है, वह भला औरों का नाथ कैसे हो पायेगा । जिन लोगों के बीच तुम घिरे हो, जिनसे तुम्हारी लालसा और वितृष्णा है और जिनसे तुम सम्मोहित हो, वे सब तब तक तुम्हारा साथ निभाने वाले हैं, जब तक तुम्हारे पास सत्ता और सम्पत्ति है । आज तुम सबके नाथ कहलाते हो। याद रखो जब पिंजरे से पंछी उड़ जायेगा, तब न तुम किसी के नाथ रहोगे न तुम्हारा कोई नाथ रहेगा । तुम अनाथ रहोगे, निपट अकेले ।

आज के सूत्र में हम महावीर के आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन पर ही चर्चा करेंगे । महावीर का दर्शन, आत्म-दर्शन है । उनके सारे सूत्र आत्म-अनुभूति के लिए हैं । वे बहिरात्मपन से छुटकारा दिलाना चाहते हैं, अन्तरात्मा में आरोहण करना चाहते हैं और परमात्म ध्यान करवाना चाहते हैं ।

भारतीय संस्कृति में ईश्वर खोज की के मुख्यतः दो ही मार्ग रहे हैं—भक्ति और ध्यान । भक्ति में ईश्वर की खोज बाहर की जाती है और ध्यान में भीतर । भक्ति गाँव-गाँव जायेगी, तीरथ-तीरथ जायेगी और पत्थर में भी परमात्मा को ढूंढने की कोशिश करेगी । उसकी प्यास तब तक नहीं बुझ पायेगी, जब तक पत्थर की मूरत में परमात्मा की सूरत न दिखा दे जाये—

मन्दिर-मन्दिर मूरत तेरी,
फिर भी न दीखे सूरत तेरी,
युग बीते, न आई मिलन की
पूरणमासी रे ।
दर्शन दो घनश्याम,
नाथ मोरी अखियाँ प्यासी रे ।

भक्ति में प्यास रहती है, एक सघन प्यास और ध्यान, भक्ति-मार्ग की चरम अवस्था का ही परिणाम है । मन्दिर-मन्दिर में खोजते हुए, मन मन्दिर की ज्योति का दर्शन हो जाता है । ध्यान का मार्ग अन्तर्जगत का मार्ग है । परमात्मा को भी अपने आप में ढूंढने का मार्ग है । आत्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को परमात्मा से कभी अलग नहीं किया जा सकता । दोनों एक साथ हैं। भला कपूर से खुशबू को कभी अलग निकालकर दिखालाया जा सकता है । जैसे तेल में तिल, दूध में मक्खन, घुले-मिले रहते हैं वैसे ही शरीर में आत्मा और परमात्मा रहते हैं । इसलिए महावीर ने परमात्मा के ध्यान की प्रेरणा कम दी, आत्म-ध्यान पर विशेष बल दिया। 'जो झायही अप्पाणम् परम समाहि हवे तस्स' जो आत्मा का ध्यान रखता है; क्योंकि आत्मा पर से मुक्त है । जहाँ स्व में वास होता है वहाँ समाधि होती है । आत्मा न शरीर है, न मन है, न वाणी है । जड़ पुद्गलों से भिन्न जो पदार्थ है, वह आत्मा है । इसलिए महावीर आज के सूत्र में उस तत्त्व को उजागर कर रहे हैं, जिसकी खोज में अब तक पता नहीं, कितने-कितने वेद, पुराण और आगम रचे गये हैं। महावीर का बहुत छोटा-सा सूत्र है यह सूत्र उन खोजियों के लिए है, जो आत्मा बनाम परमात्मा की खोज में लगे हैं । महावीर कहते हैं–

वह आत्मा परमात्मा बन जाती है, जब वह कर्मों से छुटकारा पा जाती है ।

साधकों के लिए यह बड़ा बहुमूल्य सूत्र है । महावीर इस सूत्र के माध्यम से यह सन्देश दे रहे हैं कि परमात्मा तुम स्वयं हो । आवश्यकता, मात्र आवरण को हटाने की है । आगे पर्दा लगा रहे पीछे नाटक चलता रहे । पर्दे के पीछे होने वाले नाटक की पदध्वनि सुनाई दे सकती है, संवाद सुनाई दे सकते हैं, लेकिन दर्शन नहीं हो सकता । जैसे नाटक को देखने के लिए पर्दा हटाना आवश्यक है । वैसे ही आत्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन के लिए कर्म आवरण को हटाना आवश्यक है ।

मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंडास में ।
नहीं खाल में, नहीं पोंछ में, न हड्डी न मांस में ।
न मैं देवता, न मैं मस्जिद, न काबा, कैलाश में ।
ना तो कोनो क्रिया कर्म में, नहीं जोग-बेराग में ।
खोजी होय तो तुरत में मिलियो पलभर की तलाश में ।
मैं तो रहों शहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ।
कहे 'कबीर' सुनो भई साधो, सब सांसों की सांस में ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कबीर का यह पद महावीर के सूत्र का ही विस्तार है, महावीर कहते हैं, 'अप्पा सो परमप्पा' और कबीर कहते हैं, 'सब सांसन की सांस में।' परमात्मा को खोजने के अब तक कितने उपाय किये गये। जितने धर्म, दर्शन और सम्प्रदाय चले, सबके सब परमात्म-दर्शन के नाम पर चले। कबीर कहतें हैं, मैं तो तेरे पास में। महावीर के भावों को कबीर ने अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है और उन लोगों को सन्देश दिया है, जो बकरे और भेड़ की बलि देकर परमात्मा को पाना चाहते हैं। धूप-दीप जलाये, भेड़-बकरियों की बलि देकर धरती को लहूलुहान किया, लेकिन परमात्म दर्शन तो दूर उसकी अनुभूति तक नहीं हो पायी। आदमी पाना चाहता है खुद और बलिदान देना चाहता है दूसरों का। अपनी उपलब्धि के लिए दूसरों की कुर्बानी ? यह सब कुछ धर्म के नाम पर मानवता का गला घोंटना नहीं तो और क्या है ? देवी-देवताओं को खुश करने के नाम पर आदमी स्वयं को बचाता है, दूसरों को चढ़ाता है। आज भी आदमी में आदमीयत नहीं आयी। आदम युग की तरह हिंसक प्रवृत्तियों के माध्यम से व्यक्ति देवी-देवताओं को खुश करना चाहता है, परमात्मा को पाना चाहता है। कबीर कहते हैं, 'ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंडास में।'

कहाँ खोज रहे हो परमात्मा को। क्या बकरी में परमात्मा को ढूँढ रहे हो ? भेड़ों का गला काट कर परमात्मा का दर्शन करना चाह रहे हो ? अपनी उपलब्धि के लिए अपना बलिदान आवश्यक है। बकरी को काटने से शायद बकरी पाले, लेकिन हम नहीं पा सकेगें। व्यक्ति छुरी को रगड़ रहा है, धार तेज करने के लिए। लेकिन छुरी की धार में परमात्म-दर्शन नहीं होगा।

'नहीं खाल में, नहीं पूँछ में न हड्डी न मांस में।' कबीर ने बड़ी गहरी बात कही है। वे फकीर भी हैं, संत भी है, मौलाना भी हैं, पण्डित भी हैं। कबीर बात पत्ते की उठा रहे हैं। परमात्मा न खाल में है, न हड्डी में है, न मांस में है। आखिर लोग इनकी बलि क्यों दिये जा रहे हैं ? परमात्मा न मंदिर में है, न मस्जिद में है, न काबा में है, न कैलाश में, वह तो अपने आप में है। अगर मंदिर या मस्जिद में भी ईश्वर अल्लाह को ढूँढा तो वहां भी परमात्म-तत्त्व को अपने आप में ढूंढना पड़ेगा। जैसे गाय के चित्र को देख कर गाय का बोध हो सकता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, वैसे ही परमात्म के चित्र को देख कर परमात्मा का बोध हो सकता है। जैसे बकरों के झुंड में खोया सिंह किसी अन्य सिंह को देखकर सिंहत्व का बोध प्राप्त करता है वैसे ही साधक परमात्मा के दर्शन से, निज में छिपे हुए जिनत्व को पहचानता है।

अजकुलगत केसरी लहे रे,
निज पद सिंह निहाल।
तिम प्रभु भक्ते भवि लहे रे,
आतम शक्ति संभाल ॥

कबीर अपनी साधुक्कड़ी भाषा में हठ-योग, मंत्र-योग, तंत्र-योग सबसे छुटकारा दिलाना चाह रहे हैं और आत्म-योग की प्रेरणा दे रहे हैं। महावीर का जोर आत्मदर्शन पर ही है। वे तो कहते हैं, जो स्व से अन्यत्र दृष्टि रखता है, वह संसार में जीता है और जो 'स्व' में दृष्टि रखता है, वह समाधि में जीता है। न कोई क्रिया कर्म में परमात्मा है, न योग-वैराग्य में। ये सब तो सतही साधन हैं, आत्मा में प्रवेश करने के। परमात्मा का स्वभाव 'होना है'। क्रिया-कर्म तो आडम्बर है। करना पत्तों की तरह निकलना है, होना जड़ की तरह है। एक अभ्यास है, दूसरा जीना है। एक पत्ता एक होता है, कभी उससे और पत्ते नहीं निकला करते। लेकिन एक जड़ से लाखों पत्ते निकला करते हैं। प्रेम, प्रेमी के मिलन से पूर्व भी होता है, लेकिन मिलन पर अभिव्यक्त हो जाता है। अगर अंतस् में प्रेम हो ही नहीं, तो मिलन पर अभिव्यक्त कैसे हो पायेगा। जैसे नल पानी के बाहर निकलने का साधन होता है, वैसे ही क्रियाकर्म है। टोंटी से सिर्फ जल निकल रहा है, आ तो बहुत भीतर से रहा है। क्रियाकर्म टोंटी है, अगर भीतर जल न हो तो टोंटी खोले बैठे रहो, एक बूंद पानी न गिरेगा। अंतस् में है परमात्मा, इसीलिये उसकी कभी-कभी अभिव्यक्ति होती है।

इसलिए तुम्हारे शैतान भी तुम हो, और तुम्हारे भगवान भी। अमृत भी तुम्हीं हो और तुम्हारे जहर भी तुम्हीं। सुधरे तो अमृत, बिगड़े तो जहर, चढ़े तो स्वर्ग, गिरे तो नरक। परमात्मा तुम्हारे पास है, तुम्हारे भीतर है, सच तो यह है कि तुम ही परमात्मा हो।

आखिर कहाँ है परमात्मा, आत्मा में ही परमात्मा है। इसे यों भी कह सकते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। जो आत्मा, आत्मा में लीन है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म से विमुक्त है, वही परमात्मा है । 'मैं तो बसों शहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ।' शहर यानि संसार, परमात्मा शहर– संसार में नहीं है । शहर के बाहर है, संसार से परे है । 'पूरी मवास में ।' परमात्मा का निवास स्थान मवास में है, अंतर के दुर्गम गढ़ में है । इसलिये वह व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकेगा जो विश्व विजेता है, जिसने सैकड़ों किलों पर फतह का झण्डा गाड़ा है, वह अंततः पराजित हो जाता है, अपने आपसे । सैकड़ों दुर्गम किलों पर विजय प्राप्त करने वाला अपने गढ़ के सामने आत्म-समर्पण कर देता है ।

सिकंदर जब मृत्यु शैय्या पर सोया हुआ था उसने अपने सभासदों को आदेश दिया, 'जब मैं मर जाऊँ तो मेरी कब्र पर मेरा परिचय यह खुदवा देना कि; वह सिकंदर, जो सारे संसार को जीत कर अन्त में अपने आपसे हार गया ।' दूसरों को जीतने में सच्ची विजय नहीं है, सच्ची विजय तो अपने आपको जीतने में हैं । वह जीत भी क्या हुई, जिसमें व्यक्ति अपने आप से हार गया । दूसरों को जीतने में तो मानवता लहूलुहान हो जायेगी और अपने आप को जीतने से तो अस्तित्व पर अमृत की वर्षा होगी । जब अभीप्सा की आग जलेगी, तब अमृत की वर्षा होगी । इसलिए कबीर ने कहा 'मेरी पुरी मवास में ।' अपने अंतर में है परमात्मा का निवास स्थान । 'सब सांसों की सांस में: हरः सांस, परमात्मा की सांस है । काश ! संसार इसे स्वीकार कर पाये ।

महावीर परमात्म तत्त्व को उजागर करने का सूत्र दे रहे हैं । 'अप्पो वीय परमप्पो' आत्मा ही परमात्मा बन जाता है । श्रमण संस्कृति को छोड़कर सभी धर्म-दर्शन अपने आपको परमात्मा में खो देने की प्रेरणा देते हैं । लेकिन महावीर स्वयं परमात्मा होने का पाठ पढ़ाते हैं । इसलिये जब राम और कृष्ण धरती पर अवतरण लेते हैं तब उसे अवतरण कहा जाता है । वे ईश्वर से इंसान बनते हैं । जबकि महावीर का दर्शन इंसान से ईश्वर की यात्रा हैं । वहाँ ईश्वर इंसान बनकर अपनी ऐश्वर्य शक्ति नहीं दिखाता, अपितु इंसान अपने भुजाओं के बल पर यात्रा करता है— गंगासागर से गंगोत्री की ओर, तलहटी से शिखर की ओर । यह सत्य की खोज है, शिखर की यात्रा है और उद्‌गम तक पहुँचना है । इस यात्रा में वे ही लोग सफल हो पायेगें जो महावीर और बुद्ध की तरह कृत संकल्प होंगे तेनसिंह और हिलेरी की तरह अपनी भुजाओं पर विश्वस्त होंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए जिन-दर्शन में अवतरण नहीं होता, ऊर्ध्वारोहण होता है। गंगासागर से गंगोत्री की ओर यात्रा होती है। गंगोत्री से गंगासागर की यात्रा तो मुर्दा भी कर सकता है। शिखर से तलहटी तक पत्थर भी लुढ़क सकता है। लेकिन गंगासागर से गंगोत्री की यात्रा वे ही लोग कर पाएंगे जो चेतना के धनी हैं। तलहटी से शिखर तक वे ही लोग पहुँच पाऐंगे जिनकी चैतन्य शक्ति उजागर है। इसलिये महावीर इंसान को ईश्वर बना रहे हैं, आत्मा को परमात्मा बना रहे हैं, नर को नारायण और भक्त को भगवान बना रहे हैं।

परमात्मा की खोज तो आवश्यक है। मैं यह भी नहीं कहता कि पढ़ी-सुनी बातों से प्रभावित होकर खोज शुरू कर दो, क्योंकि अगर स्वयं की प्यास नहीं होगी तो उस खोज में भी दृढ़ संकल्प नहीं रह पाओगे। परमात्मा की खोज भी प्यास से हो, बुद्धि के निर्णय से नहीं। अगर बिना प्यास के पानी भी उपलब्ध हो गया तो क्या करोगे पानी का। वह पानी भी बेकार रहेगा। पानी की सही कीमत तभी आंकी जा सकेगी जब सघन प्यास हो। कीमत पानी की नहीं, पानी के प्रति प्यास की है। अगर दुनिया में प्यास है तो निश्चित रूप से पानी भी होगा। अगर पानी न होता तो प्यास न होती और अगर परमात्मा न होता तो प्रार्थनाएं भी नहीं होतीं। जिसे जिस चीज की आवश्यकता ही न हो उसे वह चीज सौंपना, उसे गड्ढे में डालना नहीं तो और क्या है ? परमात्म-दर्शन और परमात्म-अनुभूति के लिये पहले प्यास जगाओ, फिर खोज प्रारंभ करो। दूसरा प्यास का बोध करा सकता है, लेकिन प्यासा नहीं बना सकता है। प्यास तो है स्त्रियों की और पहुँच गये मंदिर में। अगर ऐसा है तो वहाँ परमात्मा दिखाई न देगा केवल स्त्रियां ही दिखाई देंगी। परमात्मा के ध्यान में तो बैठ जाओगे, लेकिन मन अप्सराओं की ओर दौड़ेगा। पता है अनेक लोग मंदिर क्यों जाते हैं ? वे इसलिए जाते हैं कि मुकदमा न हार जायें। कोई इसलिये मंदिर जाता है कि उसे पत्नी मिल जाये, कोई पति की चाह में जा रही है तो कोई पत्नी की चाह में जा रहा है। परमात्मा की चाह तो खो गयी। एक व्यक्ति कहता था, 'आपके पास आने से मेरी दुकान अच्छी चलने लगी है।' वह रोज आता है मेरे पास, २-३ घंटे तक बैठा रहता है। इस विश्वास के सहारे वह अपनी दुकान तो चला लेगा, पर मुझसे कुछ हासिल न कर पायेगा।

मैंने सुना है, अमेरिका में एक प्रसिद्ध अभिनेत्री किसी चर्च में गयी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व सूचना थी, इसलिये सारा चर्च खचाखच भरा था। अभिनेत्री ने पादरी से कहा, लोग कितने धार्मिक हो रहे हैं। इतने लोग चर्च में आये हैं। शायद संसार में यही ऐसा चर्च होगा जहाँ इतने लोग आते हैं।

पादरी ने कहा, जी ! क्षमा करें, यह भीड़ चर्च के लिये नहीं, आपके लिये आयी है। किसी दिन आप बिना शोर शराबे के यहाँ आयें, देखें, मेरे सिवा कोई न मिलेगा।

यहाँ चिन्ता इस बात की नहीं है, कि परमात्मा मंदिर में, मिलता है या चर्च में मिलता है। परमात्मा तो हर जगह में मिलता है। पर व्यक्ति परमात्मा को ढूंढ़ने के लिये तो जाये। अगर जीवन को गौर से देखा जाये तो प्यास अपने आप उठेगी।

व्यक्ति बाहर की खोज व्यर्थ साबित होने पर भीतर की खोज प्रारंभ करता है। लेकिन तब भीतर की खोज नाकामयाब हो जाती है, जब ऊर्जा समाप्त हो जाती हैं। परमात्मा की खोज तब प्रारंभ करनी चाहिये, जब व्यक्ति शक्ति-पुंज हो। शक्ति क्षीण होने पर न संघर्ष करने की शक्ति रहेगी, न उत्साह रहेगा।

व्यक्ति धर्म की खोज तब प्रारंभ करता है, जब धन खोजते-खोजते हार जाता है और धर्म को ढूढ़ंता भी है, तो भी बाहर। खोयी भीतर, खोज बाहर, वह सुई भला कैसे हाथ लगेगी ?

धन से खुशामदी खरीदी जाती है, लेकिन यश नहीं। पद पाया जा सकता है, लेकिन प्रतिष्ठा नहीं। जब तक सत्ता हाथ रहती है, तब तक लोग पीछे लट्टू बने रहते हैं। लेकिन सत्ता खोते ही पूछ समाप्त हो जाती है। गोर्बाच्योव, जिनका संपूर्ण सोवियत संघ में वर्चस्व था, सत्ता हाथ से गयी और आज स्थिति यह आ गयी है। जो संसार की शक्ति माना जाता था, तथा जिसकी शक्तियों का संचालन संपूर्ण सोवियत संघ से होता था, आज उनका अति-सामान्यीकरण हो गया है, जैसे अस्तित्व ही नहीं है।

सन् १९१७ में रूस में क्रान्ति हुई। लेनिन ने तख्ता पलटकर सत्ता हथियायी। उस समय रूस के प्रधानमंत्री करेन्सकी थे, तख्ता पलटने से वे रूस से पलायन कर गये। लोगों ने समझा कहीं आत्महत्या कर ली होगी। सन् १९६० में लोगों ने तब दांतों तले अगुंली दबाई, जब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेन्सकी न्यूयार्क में एक दुर्घटना में मारे गये। पता चला कि वे इतने वर्षों से खिलौने की एक दुकान चला रहे थे। जिसने जीवन में कभी रूस की सत्ता संभाली थी, उसे खिलौने की दुकान चलानी पड़ी।

प्रतिष्ठा तब तक साथ निभाती है जब तक सत्ता हो। इसलिये सत्ता और सम्पत्ति की प्रतिष्ठा को कभी स्थायी न समझ लेना। जो कभी देश का प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बनता है, वह उसी देश में फांसी के फंदे पर, भुट्टो की तरह लटक जाता है। पता नहीं, इतिहास में अब तक कितने राजाओं को अपने बेटों के हाथों में मरना पड़ा। कइयों को खुदकुशी करनी पड़ी। यह सत्ता और संपत्ति का नशा तभी तक सवार रहता है, जब उसकी सुरा पास में हो। सत्ता हाथ से छिटकी और तिजोरियां खाली हुई। एक करोड़पति कब रोड़पति बन जाये भरोसा नहीं, राजा रंक और रंक राजा बन जाता है।

मनुष्य ने धर्म की भी अपनी दुकानदारी चला रखी है। थोड़ा समय धर्म होता है, फिर वही दुकानदारी। धर्म हो सांस की तरह, जैसे सांस हर पल गतिमान रहती है, वैसे ही धर्म प्रतिपल जीवन में साथ रहना चाहिये। लोग मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे जा कर परमात्मा को याद करते हैं। लेकिन बाहर आकर परमात्मा को भी भूल जाते हैं और उसके सिद्धांतों को भी भूल जाते हैं, जब पैसा आंखों के सामने नाचने लगता है। व्यक्ति धर्म करके अकड़ता है, जबकि धर्म तो विनम्रता सिखाता है। अगर यह अकड़ गिर जाये तो परमात्मा स्वतः दिखाई देगा। परमात्मा विनम्रता की भाषा जानता है, अहंकार की नहीं। राम का अस्तित्व विनम्रता में है, रावण का अस्तित्व अहंकार में है। खुदी मिटी कि खुद प्रगट हुआ। परमात्मा को पाने के लिये केवल ममत्व–मेरे पन का त्याग करना आवश्यक नहीं है। मैं का त्याग भी आवश्यक है।

'तू बंदा नहीं, सचमुच खुद में खुदा है,
बस हुआ एक नुक्ते से जुदा है।
वह नुक्ता तू खुद ही है मुजीद !
मिटा दे खुदी को, तू खुद ही खुदा है।'

खुदी मिटी कि खुदा प्रगट हुआ। व्यक्ति स्वयं को बचाकर विकल्प को ढूंढ़ता है। फूल घर में नहीं उगाता, खरीद कर परमात्मा के चरणों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में चढ़ाता है। ऐसे चढ़ाये जाने वाले फूल गुलाब, चम्पा, केतकी के हो सकते हैं, लेकिन श्रद्धा के नहीं हो सकते हैं। अब तो गुलाब के फूल भी उड़ते जा रहे हैं, कागज और प्लास्टिक के फूल चढ़ाये जा रहे हैं।

महावीर भीतर की आंख खोलने की प्रेरणा दे रहे हैं। बाहर की आंखों का उनके लिये कोई महत्व नहीं हैं। वहां महत्व प्रज्ञा का है, अगर प्रज्ञा सधी, परमात्मा सधा। घूँघट उठा कि सत्य प्रगट हुआ –'घूघँट के पट खोल, तुझे पिया मिलेगें।'

परमात्मा तुममें है, मुझमें है, सबमें है। हम उसकी इकाई हैं। जैसे लड्डू में भी मिठास होती है, और बूंदी में भी वैसे ही परमात्मा में भी मिठास है और आत्मा में भी। लड्डू ही बूंदी है और बूंदी ही लड्डू है। बीज में वृक्ष है और वृक्ष में बीज है। वैसे ही आत्मा-परमात्मा में सम्बन्ध है। हम बूंद है, वह विराट है। बुद्धिमान वह है, जो बूंद में सागर को निहार लेता है, अनंत को पहचान लेता है। जिसने बूंद को जाना, उसने सागर को जाना। अणु में ही तो विराटता छिपी है। बूंदों का समूह सागर है और इसी सागर का नाम परमात्मा है। पिण्ड में ब्रह्माण्ड छिपा है।

परमात्मा को पाने के बाद या उसकी अनुभूति करने के बाद हर कृत्य में परमात्मा प्रगट होता है। चाहे पत्तों की पाजेब हो या वीणा की झंकार। स्वर लहरी की अनुभूति तो हर जगह होगी। फिर जो कृत्य किये जाते हैं, वे सब परमात्म-पूजन के लिए होते हैं। वहां कबीर की झीनी-झीनी चादर भी, राम नाम के रस से भीनी-भीनी होती है। जो-जो कृत्य होंगे, सब परमात्मा के लिये– 'खाऊँ पीऊँ सो सेवा, उठुँ-बैठूँ सो परिक्रमा। वहां कपड़ा बुनना प्रार्थना है, पानी पीना भी सृष्टा मे लीन होने का प्रयास होता है, और भोजन ही भोग बन जाता है जो कुछ होता, सब कुछ परमात्मा के लिए।

आनंद की अनुभूति इसी परम दशा में है। ऐसी स्थिति आने पर हर खोज परमात्मा के सागर में होती है। यही जीवन का परम आनंद है। खिल उठोगे आनंद की घड़ी में, गुलाब के फूल की तरह।

वे सभी लोग परमात्मा की खोज में लगे हैं, जो या तो धार्मिक हैं या स्वयं को धार्मिक समझते हैं। पर इस दुनिया में लाखों-करोड़ों में, एक व्यक्ति ही परमात्मा को उपलब्ध हो पाता है। लोग परमात्मा को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गलत मनोदशा में खोजते हैं। अगर परमात्मा को बाहर भी स्वीकार किया जाये, तो भी हमारी जिन्दगी की आवश्यकताओं की 'क्यू' में परमात्मा सबसे अंत में दिखाई देगा। जब सब ओर से इंसान हार जाता है, तब परमात्मा की शरण स्वीकार करता है। सुख में परमात्मा को बिसराना और दुःख में याद करना स्वार्थान्धता नहीं तो और क्या है ? अपने दुःखों को दूर करने के लिये और स्वार्थ की पूर्ति के लिये भले-भले हर किसी के सामने झुक जाते हैं। व्यक्ति बीमार पड़ता है, रोग को मिटाने के लिये सबसे पहले घरेलू इलाज कराता है। फिर किसी डाक्टर का इलाज कराता है, जब वहाँ ठीक नहीं होता तो आयुर्वेदिक इलाज कराता है, वहाँ से हार गये तो किसी होम्योपैथिक के पास गये। मंत्र, तंत्र, यंत्र जब-सब ओर से व्यक्ति हार जाता है, तब शरण स्वीकार करता परमात्मा की। उन्हीं लोगों के लिये तो कबीर कहते हैं–

दुःख में सुमिरन सब करें,
सुख में करे न कोय
जो सुख में सुमिरन करें,
तो दुःख काहे का होय।''

लोग दुःख में याद करते हैं। जिन्दगी भर तो सम्पत्ति की शरण स्वीकार करते हैं। जब अस्पताल में सोये होते हैं, तब कहते 'सिद्धे शरणं पवज्जामि ' भगवान की शरण स्वीकार की जाती है दुःख में, और संसार की शरण स्वीकार की जाती है सुख में। किसी मंदिर-मस्जिद में जाकर देख लो, वहां निर्धन और मध्यम वर्गीय परिवारों की ही भीड़ ज्यादा मिलेगी। अधिसंपन्न लोग तो बहुत कम दिखाई देगें। व्यक्ति दुःख में परमात्मा की याद करता है। यह याद नहीं है, सुख की आकांक्षा है। अगर सुख में परमात्मा से प्रार्थना की गयी होती तो वहां मांग सिर्फ परमात्मा की होती। जिसने सुख की व्यर्थता जान ली है, वह व्यक्ति परमात्मा के द्वार पर जाकर परमात्मा को मांग सकता है। बाकी सारी दुनिया तो सिर्फ अपनी मांगों की पूर्ति के लिये जाती है मंदिर। परमात्मा की चाह किसे है। इसीलिये तो दुनिया कहती है, चमत्कार को नमस्कार। दुनिया के लिये ध्यान और साधना की कोई कीमत नहीं होती है। अगर किसी ने एक का दो कर दिया और दो के चार कर दिए, तो लोग उसी के पीछे लट्टू हो जायेंगे। जिन्दगी तो, लोग संसार को सौंपते ही हैं, मंदिर में भी संसार को खड़ा कर देते हैं। परमात्मा का स्वभाव दुःख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है, सच्चिदानंद है । परमात्मा से दुःख ज्यादा दूर है और सुख ज्यादा निकट है । सुख के बाद आनंद का क्रम आता है । जिन्होंने सुख में खोजा परमात्मा को, उन्होंने पा लिया । यह तो आनंद में आनंद को ढूँढना है । परमात्मा के द्वार पर भिखारी बनकर मत जाओ, मरघटी सूरत लेकर मत जाओ, गीत गाते जाओ, गुनगुनाते जाओ, नाचते-झूमते, उत्सव मनाते हुए, मीरा की तरह । जब ऐसे जाओगे, परमात्मा के द्वार पर रस झरेगा, बिन बाजे की झंकार बजेगी, बस एक बार समझ के साथ ध्यान में उतरना, डूबना, रमना, नाचना, झूमना —

'रस गगन गुफा में अजर झरे
बिन बाजा झंकार उठे,
जहां समुझि परौं जब ध्यान धरै ।'

परमात्मा को पाना है, सत्य को उपलब्ध करना है, यह कांटा नहीं फूल है । कांटे की गड़न तो हर कोई समझ सकता है, लेकिन फूल की गड़न तो संवेदनशील ही जानते हैं । कांटे का तो शराबी को भी पता चल जायेगा, लेकिन फूल की संवेदना जागरूक ही कर पायेगा । यह तो सब कुछ न्योछावर करने का द्वार है । जो डूबेगा वही तो तिर पायेगा। भिखारी खाली हाथ लौट जायेगें और सम्राट् झोली भर लेंगे ।

दुखी बिना मांगे प्रार्थना कैसे करेगा । हर प्रार्थना में दुःख को दूर करने के भाव छिपे रहेगें । आदमी दुःख में सिकुड़ता है, सुख में फैलता है । दुःख में बोलना भी नहीं चाहता, दुःख में तो आत्मघात करेगा, कब्र में सोना चाहेगा, ताकि उससे कोई बोले नहीं । परमात्मा फैलाव है और आनंद फैलाता है । आनंद सुख से आगे की स्थिति है । सुख और दुःख तो दुनियादारी है । आत्मा का स्वभाव तो सुख-दुःख से मुक्ति है, सच्चिदानंद है । दुःख अंधेरा है, आनंद प्रकाश है । रोशनी आ सकती है अंधेरे में, अंधेरा रोशनी में नहीं जा सकता । अगर प्रकाश अंधेरे में आ भी गया तो भी लोग आंख बंद कर लेगें । प्रकाश का स्वागत नहीं कर सकेंगे । धरती पर प्रकाश तो कई दफे अवतरित हुआ है, फैला है । लेकिन अंधेरे में जीने वाले लोगों ने उसका अनादर ही किया है । कभी प्रकाश को शूली पर लटकाया गया, कभी कानों में कीलें ठोंकी गईं, कभी जहर का प्याला पीने को मजबूर किया गया और कभी गोली से उड़ा दिया गया । दुःख में जीने वाले लोग आनंद का स्वागत नहीं कर पाते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुख मिट्टी का दिया है और आनंद महासूर्य है । जब सूर्य उगेगा, तब भला दिये कि क्या कीमत । सुख-दुःख और आनंद कों यूँ समझें, आनंद चांद है, सुख मन की झील पर प्रतिबिम्ब है और प्रतिबिम्ब का खोना दुःख है ।

सुख में प्रार्थना की जरूरत नहीं लगती है और दुःख में प्रार्थना करना तूफान में नौका चलाना है । सुख में प्रार्थना, शांत सागर में विहार है। दुःख में भगवान नहीं, दुःख याद आता है । भला जिसके सिर में दर्द है, वह ध्यान में सिर के दर्द को ही याद कर पाएगा । बीमार को बीमारी याद आती है । प्रार्थना हो फेहरिस्त, जिसमें इधर-उधर की अफरा-तफरी न होगी ।

इसीलिए मैं कहता हूँ ,परमात्मा आनंद स्वरूप है । आत्मा ही परमात्मा है । परमात्मा को इसी पल हासिल कर सकते हो । शेष किसी चीज को पाना हो तो दूसरे की आवश्यकता होगी । लेकिन समाधि को पाना हो, परमात्मा को पाना हो तो हमारे स्वयं के हाथ में है । परमात्मा को तो हर कोई हासिल करना चाहता है, लेकिन यह तो कुनकुना पानी है। कुनकुना पानी कभी वाष्प नहीं बना करता । जब तक १०० डिग्री तक पानी नहीं खौलेगा तब तक वाष्प नहीं बन पायेगा। यहां तो रत्ती-रत्ती समर्पित करनी होगी । परमात्मा के लिये, अपने आप के लिये ।

मैंने सुना है, कोई फकीर किसी सम्राट् से अकड़ गया । कहने लगा, परमात्मा हर किसी की रक्षा करता है । सर्दी का मौसम था, सम्राट् ने फकीर को बांधकर नदी में खड़ा कर दिया । कहने लगा, 'देखें, परमात्मा कैसे तुम्हारी रक्षा करता है ।' दूसरे दिन फकीर वैसा का वैसा नदी से निकल आया । सम्राट ने सैनिकों से पूछा, 'यह फकीर ऐसे कैसे ठंड में खड़ा रहा ।' सैनिकों ने कहा, 'आपके महल पर जो दिया जल रहा था, उसी के सहारे खड़ा रहा ।' सम्राट् ने कहा, 'फकीर ने धोखा दिया है। ठंड से इसकी रक्षा मेरे महल के दीपक ने की है, परमात्मा ने नहीं की।'

फकीर चला गया । एक दिन फकीर ने दावत दी, सम्राट् को आमंत्रित किया गया । सांझ पड गयी पर भोजन न मिला । सम्राट् बैठा-बैठा बैचेन हो गया । उसने पूछा,'भोजन में कितनी देर है !' फकीर ने कहा, 'अभी पक रहा है ।' 'कोई दो घंटे बीत गये । हर बार फकीर ने यही उत्तर दिया कि 'भोजन पक रहा है ।' सम्राट् को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका हुई। वह भीतर गया, देखा चुल्हे पर पतीले में चावल रखे थे, पर आग नहीं जल रही थी। सम्राट् ने पूछा, 'फकीर यह क्या ? 'फकीर ने कहा, 'वही आपके महल का दिया। हम उसी से इसे तपा रहे हैं, जिससे उस रात हम बचे थे।'

एक अंगारे से कुछ न होगा। अरविन्द कहा करते थे कि साधना के मार्ग में अभिप्सा चाहिए। जो सब कुछ दांव पर लगा सकता है, वही कुछ पा सकता है। जब सभी चाहें, किसी एक चाह में गिर जाती है, जैसे नदिया सागर में, तत्क्षण परमात्मा मिल जायेगा, समाधि सध जायेगी।

'बूंद' को 'समुंद' होने के लिए समुन्दर में समाना होना। बूंद मिटे तो ही सागर है। अहंकार मिटे तो ही सर्वकार प्रकट होगा। 'मैं' मिटे तो ही 'वह' जन्मेगा। 'मैं' 'पर' की दूरी मिटे, स्वयं में परमात्मा की आभा प्रगटे, यही प्रयास होने चाहिए। भगवान ऐसा ही करे।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन : चंचलता और स्थिरता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"ध्यान व्यभिचारी का भी होता है। और सही में इतना गहरा ध्यान होता है कि अगर उतनी गहराई से परमात्मा के प्रति जुड़ जाए, तो जीवन का काया-कल्प हो सकता है। व्यभिचारी ध्यान में जीता है, लेकिन यह अशुभ है। ध्यान का मतलब सिर्फ मानसिक एकाग्रता नहीं है। उन गलियारों से भी है जिससे होकर ध्यान में पहुँचा जाता है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन चंचल है, इस बात से हम सभी परिचित हैं, अगर हम अपरिचित हैं तो इस बात से कि मन की चंचलता को कैसे शांत किया जाए। मन का शांत होना जीवन में अध्यात्म का प्रवर्तन है और मन का अशांत होना ही मनुष्य का सांसारिक भटकाव है। मन की चंचलता को समझने, और उसे शांत करने के लिए, ध्यान एक जीवन्त महामार्ग है। शांत और एकाग्र मन ही, आत्म-अनुभूति और परमात्म-अनुभूति में मददगार होता है, इसलिए ध्यान मन की शांति के लिए है, आत्मा की अनुभूति के लिए है, परमात्मा में डूबने के लिए है।

महावीर शांत मन के धनी हैं। मन को शांत करने की बात कहते हैं। स्वयं के शुद्ध मन और सात्विकता का नाम ही महावीर के दृष्टि में सम्यग्दर्शन है। महावीर के सम्यग्चारित्र का सिद्धांत, वास्तव में इसी सम्यग्दर्शन की जीवन में अभिव्यक्ति है।

महावीर मनस्वी पुरुष हैं। मनस्वी का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति सदा मन के बारे में चिन्तन करता रहे। चिन्तन-मनन मनुष्य का धर्म है और इसी धर्म के सहारे मनुष्य ध्यान और समाधि में प्रवेश करता है। महावीर मन की उस दशा को ध्यान कहते हैं, जहाँ सर्वतोभावेन मन एकाग्रता की गुफा में प्रवेश कर जाता है। कहने में हम कह दें, महावीर ने अभिनिष्क्रमण, चारित्र-पालन के लिए किया था, या धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए किया था, पर सच तो यह है कि उन्होंने जीवन में नया अध्याय इसलिए प्रारम्भ किया ताकि वे बाहर एकाकी होकर, भीतर से भी एकाकी हो सकें। महावीर का आज का सूत्र, साधना का सूत्र है। इस एक सूत्र के गर्भ में अनंत संभावनाएं समायी हुई हैं। ध्यान और साधना का सार है यह सूत्र। महावीर कहते हैं—

जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं।

स्थिर अध्यवसान अर्थात् मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।

महावीर साधना मार्ग का स्वर्णिम सूत्र दे रहे हैं। ध्यान पर चर्चा करें उससे पूर्व, मन के संबंध में कुछ सोचें। आपने सुना है, 'अंत मति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो गति'। जीवन की अंतिम सांस में जैसे भाव होते हैं, आगामी जन्म में वैसा ही प्रतिफल प्राप्त होता है। मति मन की ही क्रिया है। इसलिए मन नरक की ओर भी ले जा सकता है और स्वर्ग की भी यात्रा करा सकता है। मृत्यु के समय मन की अशुभ प्रवृत्तियाँ जहाँ नरक का कारण बनती हैं, वहीं शुभ प्रवत्तियाँ स्वर्ग का। धर्म-जगत का अधिकांश संबंध मन के साथ ही जुड़ा हुआ है। मृत्यु-वेला में अशुभ भाव नरक के कारण बनते हैं और शुभ भाव स्वर्ग के। सहजतः कल्पना की जा सकती है कि अगर उस समय शुभ व अशुभ दोनों ही भावों को समाप्त कर दिया जाए तो उस यात्रा की मंजिल मोक्ष ही होगी। वास्तव में मन से मुक्ति ही मोक्ष है।

मन जिसे सदैव ही दबाने की कोशिश की गई, उसकी भावनाओं के साथ बलात्कार किया गया, उसे कुंठित करने का प्रयास किया गया, अगर उसे सही दिशा दिखाई जाती तो जो मन संसार का कारण है, वही समाधि का मूल भी बन सकता था। मन की शक्ति को आज तक कौन आंक पाया है। वास्तव में देखा जाये तो मन सर्वशक्तिमान है। इसमें ऊर्जा है, विद्युत प्रवाह है। आवश्यकता है इसके सदुपयोग की।

मन न तुम्हारा शत्रु है और न ही मित्र। अगर यह कहा जाए कि हमारी अशुभ प्रवृत्तियों का कारण मन है, तो शुभ प्रवृत्तियों का कारण कौन है ? शुभ हो या अशुभ, दोनों ही प्रवृत्तियाँ मन से ही जुड़ी हुई हैं, इसलिए मन के साथ कभी शत्रुता नहीं रखनी चाहिए। उसे मित्र बनाओ; जोर-जबर्दस्ती उसके साथ न चलेगी। अगर यह चाहते हो कि मन वहीं रहे जहाँ मैं हूँ, मन वही करे जो मैं चाहता हूँ तो मन को प्यार दो, मन को प्रेम दो। पाओगे, अब तक जिस शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था, वही शक्ति तुम्हारे हाथों में है।

मन की चंचलता जग-प्रसिद्ध है। प्रायः ऐसा ही होता है, जहाँ 'मैं' रहता है वहाँ से मन फरार हो जाता है। कई शिकायतें मेरे पास आती हैं, मन के बारे में। कहते हैं लोग, अगर हम मन्दिर जाएं तो मन मकान में जाता है। अगर माला गिनने बैठें तो मन मलाई में जाता है। दुकान जाएं तो मन कहता है, घर चलो और घर जाएं तो मन कहता है दुकान चलो। रूठा हुआ मन हमेशा वही काम करेगा, जिसे हम नहीं चाहते। काश्मीर में रहने वाला कन्याकुमारी जाकर समुद्र की लहरें देखना चाहता है, और कन्याकुमारी में रहने वाला काश्मीर आना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहता है, केसर की सुगन्ध लेना चाहता है। मन की यही गतिविधि है। उसे सदैव विपरीत का आकर्षण होता है, स्त्री मन को पुरुष का आकर्षण और पुरुष मन की स्त्री का आकर्षण।

मन का सम्बन्ध शरीर के हर तन्तु के साथ जुड़ा है, पर तभी तक जब तक शरीर का आत्मा से सम्बन्ध है। इसलिए मन शरीर में तभी तक रहता है, जब तक शरीर मुर्दा न हो जाए। जन्म से लेकर मृत्यु तक मन की महत्ता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। बंधन भी मन का परिणाम है और मुक्ति भी। 'मन एव मनुष्याणाम् कारणम् बंध मोक्षयोः।' मन ईश्वर कहलाता है, 'मन ही देवता मन ही ईश्वर, मन से बड़ा न कोय।'

मुझे हंसी आती है उन लोगों पर, जो मन को दबाना चाहते हैं उसकी गतिविधियों को बलात् अवरूद्ध करना चाहते हैं। भला शक्ति को कभी दबाया जा सकता है; शक्ति को जितना अधिक दबाया जायेगा, वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली होती जायेगी। 'स्प्रिंग' को दबाना उसमें और अधिक शक्ति पैदा करना है। मन को दबाने की नहीं, साधने की और समझने की कोशिश की जानी चाहिए। अगर मन को सही दिशा दी जाए तो, यह वह कार्य भी कर सकता है जो मुक्ति में सहायक हो!

मन की समग्रता साधने के लिए हम मन एवं उसके भीतरी-बाहरी परिवेश को समझने की चेष्टा करें।

मन, मस्तिष्क में हो ऐसा नहीं है। कुछ लोग इसे मस्तिष्क में मानते हैं। कई लोग इसका केन्द्र-बिन्दु हृदय में मानते हैं। यह बात सही है कि मन की वृत्तियों से सर्वाधिक मस्तिष्क ही प्रभावित होता है, पर उसकी तरंगे सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होती है। मन सक्रियता है, मन वृत्ति है। यह वहाँ-वहाँ जाना चाहता है, जहाँ-जहाँ तुम्हारे रागात्मक सम्बन्ध हैं। उन्हीं का चिन्तन करता है, जिनसे तुम सम्मोहित हो। जो यह कहते हैं कि मन की चंचलता के कारण ध्यान नहीं सधता, उन्होंने वास्तव में ध्यान को साधने की कोशिश ही नहीं की। वे अभी तक ध्यान के करीब ही नहीं पहुँचे हैं। जब ध्यान होता है तो मन अपने आप सध जाता है। जहाँ व्यक्ति का ध्यान, वहीं व्यक्ति का मन। जरा उन लोगों से पूछो जो यह कहते हैं कि माला और ध्यान में मन भटकता है, पर जब वे फिल्म-हॉल में फिल्म देखते हैं तो मन कहाँ भटकता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

? तीन घंटे तक एक कुर्सी से चिपके हैं, उस समय मन न घर गया, न दुकान गया, न बैंक और बाजार ही गया। इतने गहरे सम्मोहित हो जाते हो कि अगर पड़ोसी आवाज दे, तो भी बेसुध। यहाँ तुम्हारा ध्यान फिल्म की ओर है और इसलिए मन वहाँ टिका हुआ है। जितना गहरा रागात्मक संबंध तुम्हारा पत्नी और पति के प्रति है,दुकानऔर मकान के प्रति है वैसा ही सम्मोहन अगर परमात्मा के प्रति हो जाये, तो ध्यान, माला और प्रार्थना में मन भटके, इसकी गुंजाइश कम है।

हर कार्य मन ही कराता हो, ऐसी बात नहीं है। मन का भी कोई नियामक है जो उसके पीछे बैठा है। वह और कोई नहीं, तुम स्वयं हो। मन सोचता नहीं है, अपितु तुम जो सोचते हो उसी का नाम मन है। मन से मनन होता है और मनन करने वाला ही मनस्विद होता है।

मैं हिमालय की यात्रा पर था। जब मैं गंगोत्री पहुँचा तब, वहाँ केवल ध्यान साधक ही थे, आम दर्शनार्थी एक भी न था। कुछ ऐसे सन्त भी थे जो गोमुख से वहाँ आये हुए थे। एक नागा बाबा के बारे में बताया गया कि वे तपोवन में रहते हैं। गंगोत्री में, मैं कई योगियों से मिला, यह समझने के लिए कि आखिर मन के नियमन का उपाय क्या है। एक योगी जो गोमुख में रहते हैं, वहाँ आये हुए थे। जानकर आश्चर्य होगा कि उन्हें यह भी पता नहीं था कि संसार में पुरुष और स्त्री–दो तत्त्व होते हैं। क्या ! मन्दिर और मस्जिद की राजनीति का उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। चर्चा के दौरान मैंने पाया कि उन्हें संसार से सम्बन्धित, कुल मिलाकर दस बातों का ज्ञान है। सांसारिक चर्चाओं से उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं हैं। जहाँ सम्बन्ध होता है, वहाँ सम्मोहन होता है। उस व्यक्ति का मन सौ जगह क्यों भटकेगा जिसका सम्बन्ध केवल दस लोगों से है। जितने पदार्थों के साथ हमारा सम्बन्ध होगा, मन की गतिविधियाँ उतनी ही बढ़ेंगी। जिस पत्नी के लिए आज मन तड़प रहा है, विवाह से पूर्व क्या उसे एक दफा भी याद किया था ? तब तक उसके साथ कोई मानसिक सम्बन्ध भी न था। आज तुम जब ध्यान में बैठते हो, तब कभी मन फ्रिज की ओर जाता है, कभी टी.वी. की ओर ! सहजतः कल्पना की जा सकती है कि आज से मात्र पचास वर्ष पूर्व, संभवतः किसी का मन टी.वी और फ्रिज की ओर भटका भी न होगा।

मन बहता है, अतीत के संवेग के कारण, अथवा भविष्य की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल्पनाओं के कारण। अतीत के कुछ ऐसे राग-द्वेष मूलक सम्बन्ध होते हैं, जिनसे मन प्रभावित होता है और भविष्य की कुछेक ऐसी तृष्णाएँ होती हैं, जिनके लिए मन भटकता है। वर्तमान में जीना ही अमन दशा है, मन से मुक्ति है। मन के भटकाव को रोकने के लिए, उसके प्रति विरक्ति लाभकारी है। अगर उससे जुड़े तो वह मनचाही सैर कराता रहेगा। ध्यान में देखो मन की गतिविधियों को, कहाँ-कहाँ जा रहा है! जहाँ-जहाँ मन जा रहा है, वहाँ-वहाँ रागात्मक सम्बन्ध कम करने की कोशिश करो। एक-एक सम्बन्ध कम होता जायेगा और मन का भटकाव थमता जायेगा। जहाँ-जहाँ मन भटक रहा है उसे भटकने दो। सम्बन्धों की भी एक सीमा है। थका-हारा मन, अन्ततः वहीं लौटकर आ जायेगा जहाँ तुम स्वयं हो।

मन का उचित उपयोग ही ध्यान बन जाता है और गलत उपयोग अहंकार एवं क्लेश। मन का उपयोग पागल भी करता है और मन का उपयोग बुद्ध भी करते हैं। लेकिन दोनों के उपयोग में काफी फर्क है। पागल, मन के नियंत्रण में है और बुद्ध का मन नियंत्रित है। प्रबुद्ध और उपशान्त मन जहाँ अस्तित्व के द्वार उद्घाटित करता है, वहीं भ्रमित मन क्लेश का कारण बनता है। जहाँ मन समाप्त हुआ, वहीं तुम्हारी समग्रता सधेगी। और जहाँ मन समग्र हो गया, वहाँ तुम्हारा अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। राजा के साथ भी चार सिपाही हैं और चोर, के साथ भी चार सिपाही हैं, लेकिन दोनों में फर्क है। एक पक्ष में चोर सिपाही से नियंत्रित है, वहीं दूसरे पक्ष में सिपाही, राजा के नियंत्रण में हैं।

'मन' और 'मैं' में संघर्ष की वृत्ति साधनात्मक जीवन के लिए लाभकारी नहीं कही जा सकती। संघर्ष होने पर दोनों में खींचतान रहेगी और इस खींचतान का नतीजा मात्र दुःख ही है। मन तुम्हारा सखा है। इससे मैत्री के तार जोड़ो और धीरे-धीरे इसे अपने काबू में करने की कोशिश करो। हम ध्यान में इसलिए विचलित होते हैं क्यों कि मन बाहर की यात्रा करता है और हम उसे रोकने की कोशिश करते हैं। बैठे थे ध्यान करने और अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो गया। बार-बार मन को पकड़ने की कोशिश की। मन को पकड़कर टिकाना, अंधेरी कोठरी में बिल्ली पर डंडे बरसाना है, ऐसी स्थिति में जब बिल्ली कोठरी में ही न हो। तो रात भर डंडे बरसाते रहोगे, मारने वाला पसीने से तरबतर हो जायेगा, पर बिल्ली मरने वाली नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंदर भले ही बूढ़ा हो जाये, पर फदाके लगाना थोड़े ही छोड़ पायेगा। मन की ऐसी ही प्रकृति है। इसे जाने दें, जहाँ यह जाना चाहता है। आखिर कहाँ तक जायेगा ? प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्धों की एक सीमा होती है। जैसे-जैसे सम्बन्ध बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे मन की तरंगे फैलती जाती हैं। एक बच्चे का मन जितना विक्षिप्त होता है, उससे अधिक एक युवा का होगा और एक युवक का मन जितना भटकता है, उससे ज्यादा एक वृद्ध का भटकेगा। बचपन में मन दूध से जुड़ा था, खिलौने से जुड़ा था, माता पिता से जुड़ा था, कुछ मित्रों से जुड़ा था। युवावस्था में सम्बन्ध और बढ़े। पत्नी आई, परिवार बढ़ा। मकान और दुकान हुए, सैकड़ों के साथ राग और द्वेषमूलक सम्बन्ध हुए। जितने सम्बन्ध हुए, उतनी ही गतिविधियाँ भी बढ़ी। जितना बाहर का संसार फैलाओगे, मन-उतना ही अधिक चंचल होगा। ध्यान में बैठे हो, मन अपनी गतिविधियाँ प्रारम्भ करने जा रहा है, कहीं बाहर जाना चाह रहा है। उचित यह रहेगा कि उसके साथ जोर-जबर्दस्ती न की जाए। जहाँ जाना चाहे, वहीं उसे जाने दें। आखिर कहाँ तक जायेगा ? जिन-जिन के साथ सम्बन्धों के तार जुड़े हैं, उन्हीं में से कुछ एक के पास जाकर वह वापस वहीं लौट आयेगा, जहाँ तुम हो। एक दिन जायेगा, दो दिन जायेगा, पांच और दस दिन जायेगा, लेकिन अन्ततः उसे उद्‌गम स्थल की ओर ही आना पड़ेगा। आता-जाता, अपने आप थक जायेगा। फिर वह थका-हारा मन तुम्हारे ध्यान में सहायक बनेगा।

एक व्यक्ति प्रार्थना में बैठा था। कुछ गीत गुन-गुना रहा था। अचानक किसी पक्षी की आवाज सुनाई दी। उसे याद आया, बंबई में एक दिन मैंने ऐसी ही आवाज सुनी थी। अब मन की गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गई। इतनी देर तक मन प्रार्थना से जुड़ा था। मन को चंचलता देने के लिए एक पक्षी की आवाज ही काफी थी। पक्षी की आवाज ने उसे बंबई की याद दिला दी। स्मृति मन से जुड़ी रही। जो अब तक प्रार्थना से जुड़ा था, वही मन अब किसी घटना से जुड़ गया। याद आया बंबई में मैं किसी के घर गया था। घर का सम्पूर्ण ढाँचा दिखाने के लिए एक स्मृति ही काफी थी। तरंगे बड़ी सूक्ष्मता से प्रवाहित होती हैं। अब यह याद आने लगी थी कि उस व्यक्ति के साथ क्या बातचीत हुई थी ! बातचीत में उस व्यक्ति ने बताया था कि दिल्ली से कलकत्ता की मुसाफिरी के बीच उसका लड़का मर गया था, अब मन मुसाफिरी से जुड़ा, दिल्ली और कलकत्ता से जुड़ा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन ऐसे ही दौड़ता है। इसकी भाग-दौड़ दिखाई भी नहीं देती। बस एक अनुबंध चाहिए, एक कनेक्शन चाहिए। जहाँ-जहाँ इसका कनेक्शन होगा, वहाँ-वहाँ इसकी तरंगे प्रवाहित हो जायेंगी। मन को पढ़ें, बार-बार पढ़ें ! ठीक वैसे ही पढ़ें जैसे रामायण को पढ़ते हैं। विवेक से मन को रोकना संभव है। धीरे-धीरे मन उपशांत होगा। इसकी गतिविधियाँ शांत होंगी। और मन वहीं आ जायेगा, जहाँ हम स्वयं है। ध्यान में, मन की कसौटी होती है। वहाँ, चित्त की चंचलता की परीक्षा होती है। क्योंकि ध्यान में कोई विषय वस्तु नहीं रहती, एकमात्र चेतना ! सिर्फ ऊर्जा ! इसलिए मन उसमें टिकता नहीं है। क्योंकि मन को विषय चाहिए और ध्यान में विषय का अभाव है। प्रवचन में मन टिक जायेगा, संगीत-संकीर्तन में चित्त एकाग्र हो जायेगा। मंत्र में भी मन कुछ समय तक जुड़ा रहेगा, क्योंकि वहाँ विषय मिला। मन को तो जुड़ने के लिए कोई विषय चाहिए। यह तुम्हारे हाथ में है कि तुम मन को राम से जोड़ते हो या काम से। जब ध्यान में बैठोगे, तभी पता चलेगा कि मन कहाँ-कहाँ जाता है। वहाँ अकेले हो, पूरी तरह से अकेले, बाहर से ही नहीं, भीतर से भी। मन के लिए वहाँ कोई विषय भी नहीं हैं। अब यहाँ असली परीक्षा की घड़ी है—मन टिक पाता है या नहीं। अगर ध्यान में मन टिकता है तो समझो ध्यान में रुचि है और अगर नहीं टिकता है तो समझो कि जहाँ मन गया है, वहीं तुम्हारी रुचि है। यह मन के परीक्षण की घड़ी है।

उपनिषद का एक प्रिय वचन है-'य इह मनुष्याणाम् महत्ताम प्राप्नुवन्ति ध्यानो पादांशा इवैव ते भवन्ति।' जिस किसी मनुष्य को जिस किसी कार्य में प्रसिद्धि मिलती है, उसमें मूल ध्यान है, मन की एकाग्रता है। ऐसा नहीं है कि ध्यान केवल किसी एक आसान पर बैठने से ही सधता हो, जीवन के हर घटनाक्रम से ध्यान जुड़ा हुआ है। एक वैज्ञानिक का ध्यान, कुछ आविष्कारों के साथ जुड़ा हुआ है, डॉक्टर का ध्यान रोगों के साथ जुड़ा हुआ है। विद्यार्थी का ध्यान, ब्लेकबोर्ड के साथ जुड़ा हुआ है। अगर ऐसा न हो, किसी कार्य को ध्यानपूर्वक न किया गया तो सफलता कभी हाथ न लगेगी। महावीर तो यहाँ तक कहते हैं कि बैठो भी ध्यान से, चलो भी ध्यान से, बोलो भी ध्यानपूर्वक। ध्यानपूर्वक किसी भी कार्य को करोगे तो पाप कर्म का बंधन नहीं होगा।

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं मासे जयं सये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जयं भुजंतो भासंतो, पावंकम्मं न बंधई ।

कीमत यतना की है, विवेक की है, तुम्हारे ध्यान की है । हालांकि इन सब में ध्यान सालम्बन होता है, किसी एक पदार्थ के साथ जुड़ा रहता है । यहाँ इतनी सफलता अवश्य प्राप्त हो जाती है कि सौ जगह भटकता मन एक जगह आकर टिक जाता है । लेकिन मन की असली परीक्षा तो आलम्बन रहित ध्यान में होगी, जहाँ मन को टिकाने के लिए कोई विषय न हो, वहीं मन असली स्वरूप दिखायेगा । इस स्थिति का शांत होना ही ध्यान है, योग है, समाधि है ।

महावीर कहते हैं 'मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है ।' वास्तव में मन का चारित्र बड़ा विचित्र है । लम्बे अरसे तक एकाग्रता तो दूर की बात है, चन्द मिनटों के लिए भी एक कमरे में नहीं बैठ सकता । लोग, मन की चंचलता की तुलना बंदर से करते हैं । पर मन, इस तरह की उपमा से भी बहुत आगे है । मन की शक्ति के सामने, बंदर की शक्ति नगण्य है और नगण्य है उसकी चंचलता भी । बंदर चंचलता का प्रतीक है लेकिन उसे भी शांत किया जा सकता है, एक ठौर पर बांधा जा सकता है, उसकी गति की एक सीमा है । लेकिन मन ! न इसे बांधा जा सकता है और नहीं पता लगाया जा सकता है कि इसके कितने ठौर-ठिकाने हैं ।

महावीर हमें मनस्वी बनाना चाहते हैं, एकाग्र करना चाहते हैं। और उसी एकाग्रता का नाम ही तो ध्यान है । अशुभ से शुभ की ओर, शुभ से शुद्धत्व की ओर यात्रा करना, यही साधनात्मक जीवन का विकास है । ध्यान तो अशुभ में भी हो सकता है । इसलिए महावीर ने अशुभ ध्यान के लिए दो शब्द प्रयुक्त किये—आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान। ये दोनों ध्यान के विकृत रूप हैं । लेकिन जिस ध्यान का सम्बन्ध आत्म तत्त्व के साथ है, वह तो शुभ और शुद्धत्त्व में ही हो सकता है ।

ध्यान व्यभिचारी का भी होता है । और सही में इतना गहरा ध्यान होता है कि अगर उतनी गहराई से परमात्मा के प्रति जुड़ जाए, तो जीवन का काया-कल्प हो सकता है । व्यभिचारी ध्यान में जीता है, लेकिन यह अशुभ है । ध्यान का मतलब सिर्फ मानसिक एकाग्रता नहीं हैं । उन गलियारों से भी है जिससे होकर ध्यान में पहुँचा जाता है । शक्कर जितनी मीठी होती है उससे ज्यादा 'सेक्रिन' मीठा होता है । माना कि, जिह्वा को तो दोनों ही मिठास देते हैं लेकिन दोनों मिठास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को एक मानकर, सेक्रिन का उपयोग करना जीवन के साथ तो खिलवाड़ ही कहा जायेगा।

वैसे एक चोर, व्यभिचारी या विषयभोगी मानसिक रूप से एकाग्र तो हो सकता है, लेकिन वह एकाग्रता भी उस स्नान की तरह है जिसमें व्यक्ति कीचड़ के नाले में स्नान करता है। यह क्षणिक एकाग्रता भी चित्त चांचल्य में सहायक बनती है।

ध्यान, चित्त का स्नान है, चित्त की प्रसन्नता है। भीतर में उपजने वाला एक अहोभाव है, जैसे-जैसे व्यक्ति शुभ-दृष्टि या सम-दृष्टि में प्रवेश करता है वैसे-वैसे सर्वत्र मांगल्य के भाव पैदा होते है। यह तो चित्त का स्नान है शुभ-दृष्टि, सम-दृष्टि और सर्वत्र मांगल्य-भाव यह सच में गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम है, जीवन का तीर्थ है, और इसी में स्नान कर व्यक्ति चित्त को प्रक्षालित करता है, और आने वाले कल का तीर्थंकर बन जाता है।

शुद्धि और प्रसन्नता–ये चित्त के वे दो परिणाम हैं जिन्हें हम एकाग्रता की पूर्व सीढ़ियाँ कह सकते हैं। यह क्रमशः विकास है। महावीर ने इसी मार्ग से मंजिल को हासिल किया था। आत्मविकास, यह ध्यान का अंतिम चरण तो हो सकता है लेकिन प्रथम चरण तो, स्व पर विकास ही होना चाहिए। सर्वत्र मांगल्य की कामना, शुभ-दृष्टि और सम-दृष्टि में जीना, चित्त को निर्मल करना। चित्त की इस निर्मलता को ही मैं ध्यान का पहला चरण कहता हूँ। शुद्धि और प्रसन्नता से एकाग्रता की सीढ़ी पर पांव बढ़ते हैं और धीरे-धीरे ऐसा क्रमिक विकास होता है कि व्यक्ति विचार-शंकर से मुक्त हो जाता है।

महावीर कहते हैं, 'चित्त की एकाग्रता यही ध्यान है'। इस सूत्र को हमें गहराई से समझना है क्योंकि चित्त की एकाग्रता कहीं भी सध सकती है। परन्तु चित्त को एकाग्र करने से पूर्व चित्त का निर्मलीकरण करना आवश्यक है। यदि गन्दे पात्र में साफ पानी भी डाला गया तो पानी गन्दला हो जायेगा।

चित्त को शुद्ध कैसे किया जाए ? सुखी से मैत्री और दुःखी के प्रति करुणा चित्त के निर्मलीकरण में सहायक बन सकती है। पूण्य से प्रेम और पाप के प्रति करुणा, ये सब वे साधन है जो चित्त को धीरे-धीरे बेदाग कर देते है यदि चित्त को निर्मल करना चाहते हो तो सर्व प्रथम पहली क्रिया प्रारम्भ करो कि मैं दोष नहीं देखूंगा। दोष भले ही, अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हों या पराये उनकी ओर नजर मत डालो। क्योंकि दोष हमेशा, हमारी नजरों को अपवित्र करते हैं और चित्त की निर्मलता को समाप्त करते हैं, इसलिए अपने और पराये सभी दोषों को नजर-अंदाज करते जाओ अगर देखना चाहते हो तो गुणों को देखो, उन्हें बढ़ावा दो, पुनः-पुनः उनका स्मरण करो, ऐसा करने से गुण अपने आप बढ़ते जायेंगे और दोष दबते जाएंगे।

जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे सम्बन्ध और फैलते जाते हैं और सम्बन्धों का फैलाव चित्त चांचल्य का सेतु है। बचपन में गिने-चुने सम्बन्ध थे, युवा अवस्था में वे और ज्यादा फैलते गये और वृद्धावस्था में तो हम सम्बन्धों के जाल में ही उलझ जाते हैं। एक बात तय है कि सम्बन्धों की प्रगाढ़ता चित्त की चंचलता में सहायता देती है।

चित्त की एकाग्रता के लिए आत्म-स्मरण की कम, आत्म-अनुभव की ज्यादा जरूरत है। मैं आत्मा हूँ ,इसका पुनः-पुनः जाप करने से आत्म- अनुभव नहीं होगा। विश्वास हो जाएगा, पर यह तो ऐसा होगा कि हम भूल न जायें इसलिए पुनः-पुनः स्मरण करके उसको पक्का किया जाता है। मैं मनुष्य हूँ, इसका जाप करने की आवश्यकता नहीं है, अनुभव करने की आवश्यकता है। चित्त को एकाग्र करने की पूर्व भूमिकाओं में, हम कुछ-एक आलम्बन भी स्वीकार कर सकते हैं। जैसे- मंदिर मैं बैठकर किसी मूर्त्ति को निहारना। नजरों की एकाग्रता से चित्त की एकाग्रता में सहायता मिलती है। लम्बी अवधि तक परमात्मा की मूर्त्ति को निहारने से, परमात्म स्वरूप को आत्मसात् करने की शक्ति तो मिलती ही है, अनेक स्थानों पर भटक रहा मन एक स्थान पर भी टिक जाता है। मंत्र का जाप भी तो इसलिए किया जाता है ताकि मन किसी एक विचार पर आकर केन्द्रित हो जाए। सम्भव है कि सालम्बन ध्यान में भी चित्त की चंचलता जारी रहे, लेकिन क्रमशः अभ्यास से यह चंचलता भी समाप्त हो जाती है। मूर्त्ति, चित्र, अर्थचिंतन, नामस्मरण आदि ऐसे अनेक आलम्बन हैं, जो ध्यान की पूर्व भूमिका में हमें सहायता दे सकते हैं।

सालम्बन ध्यान से दो कदम आगे बढ़ने के बाद, यह प्रयास किया जाना चाहिए कि दो विकल्पों के बीच के समय के अंतराल को बढ़ाते जाएं। जैसे-जैसे हम विकल्पों के बीच की दूरी को बढ़ाते जाएंगे वैसे-वैसे ध्यान और बढ़ता जाएगा क्योंकि विकल्पों के बीच की शून्य अवस्था ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो ध्यान है। अभ्यास कार्य, सिद्धि में सहायक होता है और ध्यान का विकास, अभ्यास से ही होता है। कभी यह-कभी वह, कभी इधर-कभी उधर यह तो घड़ी के उस पेण्डुलम की अवस्था है, जो अनवरत इधर से उधर गति करता रहता है। विकल्पों में दूरी करने के लिए श्वासों के बीच भी अवकाश बढ़ाते जाएं, क्योंकि श्वास लेने और छोड़ने के बीच का जो समय होता है, उस समय विकल्प पास नहीं फटकते और अगर यह स्थिति लम्बी अवधि तक रहती है तो ध्यान के लिए काफी लाभदायक है।

एकाग्र चित्त की अवस्था के लिए, व्यक्ति स्वयं को स्वप्न और सुषुप्त दोनों से उपरत करने का प्रयास करे। स्वप्न अवस्था भटकाव है और निद्रा खुमारी। नींद लेना शरीर के लिए आवश्यक है लेकिन वह नींद शरीर और स्वास्थ्य दोनों के लिए हानिकारक है, जिस पर बेहोशीपन सवार हो जाता है। सोना जरूरी है, परन्तु बोध पूर्वक। सुषुप्ति में भी जागृति की सुरभि रहनी चाहिए। रात को नींद ऐसी लें जिसमें ८०% निद्रा हो और २०% जागृति, इसलिए कहते हैं कि ध्यानी नींद में भी जगा रहता है। वह रात्रि को विश्राम करता है, पर बेसुध नहीं होता। विश्राम अनुचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि हर परिश्रम विश्राम चाहता है।

सोते समय यह संकल्प करके सोयें कि मैं मौन रहूँगा। किसी संकल्प को पुनः-पुनः दोहराने से संकल्प में दृढ़ता आ जाती है और अगर सोते समय प्रतिदिन यह संकल्प करें कि मैं मौन रहूँगा तो इसका परिणाम यह आयेगा कि धीरे-धीरे मौन जबान का ही नहीं, मन का भी साथी हो जाएगा, फिर स्वप्न भी कम आयेंगे। निद्रा अवस्था में आने वाले स्वप्न, हमारे चित्त की चंचलता के द्योतक हैं। सोते समय ध्यान करके सोयें और उठने के बाद भी ध्यान करें जैसे, किसी रोगी के रोग को ठीक करने के लिए सुबह-शाम गोली दी जाती है। एक गोली अपना प्रभाव १२ घंटे तक दिखाती है। वैसे ही आधा घंटे का ध्यान १२ घंटे तक ऊर्जा, शक्ति देता है।

महावीर कहते हैं, 'मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।' आत्म-विकास के मार्ग में अगर कोई सर्वाधिक अवरोधक तत्त्व है, तो वह मन है। अतीत की निरर्थक स्मृतियाँ और भविष्य की कल्पनायें मन की चंचलता में सर्वाधिक सहयोगी बनती हैं। यह तो हमारा सौभाग्य है कि वर्तमान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के दर्पण में पूर्व जन्म प्रतिबिम्बत नहीं होता है, अन्यथा एक जन्म के सम्बन्धों की जानकारी में मन की चंचलता इतनी पराकाष्ठा पर है और मन को साधे बिना अगर अतीत के हजार वर्षों की जानकारी मिल जाये तो मनुष्य पर पागलपन का भूत सवार हो जायेगा। बीस-तीस वर्ष की स्मृति में तो विक्षिप्त हुए जा रहे हो। अगर हजार वर्ष पूर्व की स्मृति हमारे हाथ लग गई तो क्या इस विक्षिप्तता का कोई अंत होगा ! इसलिए अतीत और भविष्य दोनों से मुक्त होकर,व्यक्ति जब वर्तमान का अनुपश्यी बनता है, तभी, वह आत्म तत्त्व को उपलब्ध कर पाता है।

'मैं कौन हूँ' यह प्रश्न तुम कब से करते आये हो इसका पता नहीं है। कल भी करते थे, आज भी करते हो। 'मैं कौन हूँ ' यह भी रटा-रटाया प्रश्न और 'मैं आत्मा हूँ' यह भी सुना-सुनाया उत्तर। जब प्रश्न भीतर से नहीं उपजा है, तब उत्तर भीतर से कैसे आयेगा ? 'मैं कौन हूँ' इसलिए भी नहीं पूछा जाना चाहिए कि कभी तुम्हारे गुरु भी सुबह उठकर पूछा करते थे। किसी प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हजार-हजार दफे गुन–गुनाना नहीं पड़ता है। प्रश्न आया है बाहर से और उत्तर पूछ रहे हो भीतर से। 'अहं को आसी', 'कोऽहम्' और 'मैं कौन हूँ'–हजारों वर्ष पहले भी इन्सान यह प्रश्न पूछता आया है और आज भी पूछता है। 'मैं कौन हूँ' यह एक खोज की यात्रा थी और हमने इसे एक जप, जाप की यात्रा बना ली। 'मैं आत्मा हूँ' इसकी अनुभूति तो आवश्यक है पर जाप करना आवश्यक नहीं। 'मैं मनुष्य हूँ' इसका जप कहाँ आवश्यक है ? इसलिए 'मैं कौन हूँ', 'कोऽहम्' से 'सोऽहम्' 'सोऽहम्' से हंसोऽहम्' और 'हंसोऽहम्' से 'शिवोऽहम' की सहयात्रा, यह जीवन की अनुभव पूर्ण उपलब्धि है। लेकिन इन सबको एक मंत्र के रूप में स्वीकार करके, केवल रटन करना और ग्रन्थि-विमोचन का उपक्रम न करना, यह साधना मार्ग की अपूर्णता ही कही जायेगी।

महावीर कहते हैं 'मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।' मन शक्ति का स्वामी है। हमारे जीवन में इससे शक्तिशाली तत्त्व आत्मा के सिवा और कोई नहीं हो सकता। आत्मा का पुद्गल परिणमन ही तो मन है। इसलिए भाव-मन आत्मा है, और द्रव्य-मन के अंतर्गत हमारे विचार आते हैं, मन के समस्त संवेग आते हैं। ये सब द्रव्य-मन के अन्तर्गत ही हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति भाव-मन को जागृत करता है और द्रव्य-मन की उच्छृंखलताओं को समाप्त करता है। यहाँ एक बात समझने जैसी है कि ध्यान तब सधता है जब मानसिक एकाग्रता हो और मानसिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्रता तब होती है जब ध्यान का आलम्बन हो। इसलिए ध्यान और मानसिक एकाग्रता दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। ध्यान का सहारा लेकर ही व्यक्ति मानसिक एकाग्रता में प्रवेश कर पाता है और क्रमश विकास करते हुए साधक समाधि में प्रवेश करता है। मन की शक्ति जो इधर-उधर बिखरी हुई है, और इसी बँटने, बिखेरने और टूटने के कारण ही हम उसकी शक्ति का सदुपयोग नहीं कर पाते हैं। यह हर दिशा में गति कर सकता है, हर कार्य में प्रवेश कर सकता है और अतीत व भविष्य की प्रत्येक कल्पना कर सकता है। शरीर के जितने भी अवयव हैं, सबकी शक्ति सीमित है। आंख सिर्फ देख सकती है, कान सिर्फ सुन सकते हैं, नाक व मुंह की भी अपनी सीमित शक्तियाँ है, लेकिन इसके बावजूद इन सम्पूर्ण शक्तियों का स्वामी अकेला मन है।

महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि तुम मन को दबाओ, इसके साथ जोर-जबरन करो, उसकी टाँग खींचो। यह सब ध्यान नहीं हुआ, ध्यान के नाम पर सिर्फ छलावा है। क्योंकि मन जिसे अब तक सिर्फ बंधन का ही कारण माना गया, बेचारे को सदा दबाया गया। काश, इसे मुक्ति का भी कारण माना जाता ! अगर ऐसा किया जाता तो मन की ऊर्जा को एक सही दिशा निर्देश मिलता,और 'मन को मारो' के बजाय 'मन को समझो' की भाषा होती। इसलिए ध्यान न तो मन को मारना है, न दबाना है और न ही बांधना है, ध्यान तो मन की एकाग्रता है। सौ दिशाओं में भटकता मन, किसी एक तत्त्व पर केन्द्रित हो गया, यही ध्यान है। वह बात गौण है कि वह तत्त्व क्या है, भले ही वह तत्त्व परमात्मा हो या पत्नी, दुकान हो या मकान, मन्दिर हो या मूर्त्ति कोई भी तत्त्व क्यों न हो, जहाँ पर भी एकाग्रता सधी, इसी का नाम ध्यान।

एक बच्चा कक्षा में बैठा है, अध्यापक पाठ पढ़ा रहा है, बच्चे की नजर खिड़की से बाहर जाती है, देखता है चिड़िया अपने बच्चों के मुंह में एक-एक दाना डाल रही है। इसे देखने में वह इतना एकाग्र हो जाता है कि वह कक्षा में है, इसका भी उसे भान नहीं रहता। अचानक एक चॉक का टुकड़ा उसके सिर से टकराता है। अध्यापक कहता है, 'तुम्हारा ध्यान किधर है।' छात्र सकपका जाता है, ध्यान उसका भंग हो जाता है। अध्यापक सोचता है, छात्र का ध्यान विचलित है जब कि छात्र पूरी तरह से ध्यान में है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान चाहे शुभ का हो या अशुभ का, ध्यान तो आखिर ध्यान ही है। इसलिए महावीर ने आर्त और रौद्र चिन्तन को भी ध्यान की संज्ञा दी। धर्म-चिन्तन और शुक्ल-चिन्तन–सभी मनीषियों ने इसे ध्यान माना। लेकिन इस संदर्भ में महावीर और दो कदम आगे बढ़े, कहा–'आर्त और रौद्र–अशुभ चिन्तन, यह भी ध्यान है।' तुलसीदास के जीवन की वह घटना महावीर के इस चिन्तन के साथ हू-ब-हू मेल खाती है जब उनकी पत्नी कहती है, जितना तुमने मेरा (काम का) चिन्तन किया, उतना ही अगर राम का करते तो बेड़ा पार हो जाता। चिन्तन जारी है, फिर चाहे वह राम का हो या काम का।

यह महावीर की विशेषता है कि वे अशुभ को भी ध्यान की संज्ञा देकर व्यक्ति को ध्यान में प्रवेश कराना चाहते हैं। गुणस्थान के क्रम में महावीर ने केवल सम्यक्त्व को ही गुणस्थान नहीं माना। उन्होंने गुणस्थान क्रम की शुरुआत ही मिथ्यात्व से की है। वे कर्दम में से कमल निखारना चाहते हैं। मिथ्यात्व में से सम्यक्तव का फूल खिलाना चाहते हैं, अशुभ में ही शुभ का बीजारोपण करना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं 'मानसिक एकाग्रता.....एकाग्रता की आवश्यकता, मात्र अध्यात्म के मार्ग में ही नहीं है। हम जो भी कार्य करें, एकाग्रता के साथ, तन्मयता के साथ, अपने आप को पूरी तरह जोड़कर अहोभाव के साथ। चाहे सूर ने इकतारा बजाया हो, मीरा की करताल चली हो या घुंघुरुओं की थिरकन हो, कबीर ने चाहे कपड़े बुने हो, रैदास ने जूते सिये हों या गोरा ने मिट्टी पर थापें दी हों आखिर इन सबको इनसे उपलब्धि तो एकाग्रता और तन्मयता से ही हुई है। जिन्हें हम ध्यान और साधना के विराधक तत्त्व मानते हैं, व्यक्ति अगर पूरी तन्मयता के साथ उन कृत्यों को पूर्ण करे तो ये कृत्य भी सालम्बन ध्यान में उपयोगी हो सकते हैं। एक साथ कई कृत्यों और वस्तुओं का ध्यान करना हमारी कर्मशक्ति में तो बढ़ोतरी कर सकता है, हम इसे अपनी क्षमता का विकास भी मान सकते हैं, लेकिन ध्यान-शक्ति का विकास तभी होगा जब व्यक्ति, किसी एक कृत्य में पूरी तरह से तन्मय हो। घड़ी के सारे पुर्जे बिखरे पड़े हों तो सबके सब बेकार हैं। लेकिन उन सबको अगर व्यवस्थित रूप से एकत्रित कर दिया जाये तो, समय तुम्हारे हाथ में बंध जायेगा। शक्ति को बिखेरना यह कार्य है और उन्हें इकट्ठा करना, यह ध्यान है। जब ये दोनों सध जाते हैं उसी का नाम प्रज्ञा जागरण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए महावीर व्यक्ति को मन की विकृतियों की जानकारी देने के बाद, सुकृत का दिशा-निर्देश भी कराते हैं। महावीर बंधन में से ही विमोचन की कल्पना कर रहे हैं। जो मन तुम्हें बांध रहा है वही मन तुम्हें मुक्ति भी दे सकता है। ध्यान के लिए मानसिक एकाग्रता आवश्यक है, पर मैं एक बात और कहना चाहूंगा कि इस एकाग्रता का सही मागदर्शन होना भी आवश्यक है।

हमारी बीमारियों का कारण, ९०% केवल मन है। रोग और इलाज के कारण और स्थान परिवर्तित हो जाते हैं, लेकिन मूल उत्पत्ति स्थान नहीं बदल पाता। अगर वृक्षों की जड़ों में रोग फंसा है तो, पत्तों का इलाज करने से क्या लाभ और किस-किस पत्ते को सुधारोगे। जिसकी जड़ कड़वी है, चाहे उसका फल चखो या फूल, पत्ते चखो या डालियाँ, कड़वाहट तो सर्वत्र मिलेगी। पत्ते-पत्ते में कड़वाहट फैली है इसका कारण डालियाँ नहीं है, वृक्ष की शाखाएं भी नहीं हैं, इसका कारण जड़ है, बीज है। एक व्यक्तित्व में ही क्रोध है, अहंकार है, माया और लोभ है, राग और द्वेष है, जीवन का हर चरण दूषित है, किस-किस चरण को सुधारोगे ? हम अपनी वृत्तियों के किसी एक तत्त्व को दबायेंगे तो दूसरा तत्त्व उभरेगा, क्रोध को दबायेंगे तो वासना उभरेगी, लोभ को दबायेंगे तो माया उभरेगी, राग को दबायेंगे तो द्वेष उभरेगा, इसलिए इनको दबाने की बजाय, इनके मूल उत्स को ढूंढो। अगर वह सुधर गया तो सब कुछ सुधर जायेगा। अगर बीज में छिपी कड़वाहट को निकाल दिया जाये तो फल भी मीठे होंगे, फूल भी और पत्ते भी मीठे होंगे। जैसे वृक्ष में गुण और अवगुण का कारण जड़ होती है वैसे ही मनुष्य में गुण और अवगुण का कारण मन होता है। मनुष्य की जड़ मन है। जो मन से जड़ है, वह मनुष्य। आदमी आदम से बना, मैं मन से बना, इसलिए मनुष्य को मन से तो कभी अतिरिक्त किया ही नहीं जा सकता। हाँ अशुभ से शुभ की ओर दिया जाने वाला दिशा निर्देश, यह मनुष्य में भगवत्ता की तलाश है।

हमें तीन तत्त्व प्राप्त हुए हैं–आत्मा, मन और देह। इन तीन तत्त्वों का एक छोर आत्मा है दूसरा छोर देह है और जो बीच में है इसी का नाम मन है। यह जो बीच में बैठा है यही दोनों को प्रभावित करता है। जब यह देह में जाकर जुड़ता है तब संसार का जन्म होता है और जब आत्मा से जाकर जुड़ता है तब समाधि पैदा होती है। यह बात सही है कि व्यक्ति जो कुछ करता है उसका मूल नियामक तो वह स्वयं ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है जिसे हम आत्मा कहते हैं लेकिन इनकी पूरी गतिविधियों का संचालन मन करता है।

आत्मा न तो शुभ करती है न अशुभ करती है। वह मन को साधन बनाकर शुभ-अशुभ दोनों प्रवृत्तियाँ करा लेती है। इसलिए गंगोत्री तो केवल गंगा का उत्स है, पवित्रता का उद्‌गम स्थल है लेकिन मन पवित्रता का भी उद्‌गम स्थल है, और अपवित्रता का भी। क्रोध भी इसी से प्रकट होता है और क्षमा भी। क्रोध अशुभ मन का परिणाम है और क्षमा शुभ मन का। जो सीढ़ी ऊपर की ओर ले जाती है, उसी सीढ़ी से नीचे की और वापस आना पड़ता है और मन उस बंदर सा है, जो इस सीढ़ी पर निरन्तर उछल-कूद करता रहता है। कभी क्रोध में, कभी क्षमा में, कभी राग में, कभी द्वेष में, कहीं अहंकार में, कहीं नम्रता में, कहीं लोभ में, कहीं संतोष में—एक ही मन, एक ही दिन में इन सबमें परिवर्तित होता रहता है। घर पर पत्नी से लड़कर आये और किसी गुरु के पास जाकर धोक लगाने लगे, स्वयं को विनम्र प्रगट करने लगे, निश्चित रूप से व्यक्ति को विनम्रता और क्षमाभाव में जीना चाहिए लेकिन क्रोध और वैमनस्य को छिपाकर प्रदर्शित की जाने वाली क्षमा या आत्मीयता मन की प्रपंचपूर्ण वृत्ति नहीं तो और क्या है ?

सब एक दूजे से प्रगट होते हैं। जब-जब व्यक्ति के अहंकार को चोट लगती है, तब-तब क्रोध पैदा होता है। जब-जब अपेक्षा, उपेक्षा में बदलती है, तब-तब अहंकार पैदा होता है। व्यक्ति दूसरे के आचार, व्यवहार सब कुछ वैसे ही देखना चाहता है जो उसके मनोनुकुल हो। जब-जब मन के प्रतिकूल कोई प्रतिक्रिया होती है, हम असंतुष्ट हो जाते हैं और जैसे चुल्हे पर दूध उफनता है वैसे ही हमारे मन में उफान आने लगते हैं। जब-जब व्यक्ति के भीतर उफान उठता है तब-तब व्यक्ति तूफान खड़ा करता है। एक ऑफिसर की यह अपेक्षा रहती है कि जब मैं आफिस में जाऊँ, चपरासी मुझे सलाम करे। यदि यह अपेक्षा पूरी न हुई तो मन में विपरीत संवेग पैदा होते हैं। एक पति की अपेक्षा रहती है जब वह आफिस से घर पहुँचे तो पत्नी मुस्कुराहट के साथ स्वागत करे। जब ऐसा नहीं होता है तब भीतर से झल्लाहट पैदा होती है। वास्तव में इन सबको मर्यादा की संज्ञा देकर हम मीठे अहंकार मे जीते हैं और जहर तो जहर ही होता है चाहे, वह मिश्री घुला भी क्यें न हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति के, मन के संवेग तभी विपरीत धर्मी बनते हैं, जब विपरीत वातावरण उसके सामने उपस्थित होता है, प्रत्येक विपरीत वातावरण में, अपने आपको अनुपस्थित समझना या स्वयं को साक्षी-भाव या दृष्टा-भाव में स्थित कर लेना, मानसिक एकाग्रता का प्रथम और आवश्यक साधन है। हम प्रशंसा से प्रसन्न होते हैं, भले ही वह झूठी हो। किसी स्त्री को तुम सुंदर कह दो वह खुश होगी। सच तो यह है कि जब हम क्रोध में होते हैं, तब कुरूप होते हैं, जब क्षमा में होते हैं तब सुंदर होते हैं। तुम नहीं जानते हो जब तुम क्रोध करते हो तब तुम्हारा मन ही नहीं, तुम्हारा चेहरा भी कितना विकृत हो जाता है। कभी क्रोध करने के तत्काल बाद जाकर आइने में अपना चेहरा देखो, वीभत्सता दिखाई देगी। और कभी क्षमा-भाव में भी आइने पर नजर डालो, चेहरे पर सौन्दर्य झलकेगा। आखिर क्रूरता और करुणा में कुछ तो फर्क होता ही है।

आज के सूत्र में, महावीर ध्यान पर चर्चा करने से पूर्व, मानसिक एकाग्रता पर जोर दे रहे हैं। आखिर हमें वे सूत्र भी ढूंढने होंगे, जिनसे चंचल मन का निग्रह किया जा सके। गीता के कृष्ण कहते हैं 'अभ्यासेन.....अभ्यास और वैराग्य से चंचल मन का निग्रह किया जा सकता है।' जैसे-जैसे व्यक्ति एक क्रमिक अभ्यास के द्वारा स्वयं को राग से विराग की ओर गति देता है, वैसे-वैसे वह वीतरागता के समीप पहुँचता है। मन को एकाग्र करने के लिए कुछेक साधन भी हैं—पहला साधन है, भोगों से वैराग्य। व्यक्ति अपने आपको धीरे-धीरे भोगों से भी निर्लिप्त करने का प्रयास करे। संसार में तो जनक भी रहे थे, भरत भी रहे थे लेकिन उन्होंने संसार में भी समाधि के सूत्र ढूंढे। मैं यह भी नहीं कहता कि संसार छोड़कर जंगल में जाकर बस जाओ। क्योंकि ऐसा करने से, आज जिनके साथ तुम्हारा रागात्मक संबंध है, उनके साथ द्वेषमूलक संबंध स्थापित हो जायेगा। वैराग्य का अर्थ यह तो नहीं है कि तुम किसी के राग को द्वेष में बदल दो। जैसे राग, वैराग्य का विपरीत धर्मी तत्त्व है, वैसे ही द्वेष भी विपरीत धर्मी है। इसलिए वीतराग वह है, जो राग और द्वेष दोनों से मुक्त हो चुका है।अगर भोगों से व्यक्ति अपने आपको क्रमशः उपरत करेगा तो, परिणाम यह होगा कि व्यक्ति का राग भाव कम होगा और द्वेष भाव पैदा नहीं हो पायेगा।

मन की एकाग्रता के लिए हमें मन की क्रियाओं पर विचार करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। रात को सोते समय मन के अच्छे-बुरे सभी कार्यों पर विचार करें। अच्छे संकल्पों की सराहना और बुरे विकल्पों के प्रति करुणा, अगर व्यक्ति प्रतिदिन ऐसा करता है तो परिणाम यह निकलेगा कि सत्कर्म के प्रति संकल्प बढ़ते जायेंगे और दुष्कर्म से पुनर्वापसी होगी। हम कोशिश करें कि मन को हर समय सत्कर्म में सलंग्न रखेंगे। आवश्यकतानुसार निर्देश दें अपने विपरीत संवेगों को पहचानें, और उन सबके प्रति साक्षी भाव में लौटने का प्रयास करें। अशुभ से शुभ की ओर प्रारम्भ की गई यह यात्रा, अंत में शुद्धत्व-सिद्धत्व की मंजिल प्राप्त करा देती है। हमारी यह मजबूरी है कि हमारा मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता तो अच्छा यह होगा कि उसे मांगलिक कार्यो में संलग्न करें। जब मन अनेक सत्कर्मों में सलंग्न हो जाये तब उसे एकाग्र करने का प्रयास करें।

मन की एकाग्रता के लिए हम सालम्बन ध्यान का भी प्रयोग कर सकते हैं, जैसे ज्योति को एकटक निहारना। सांध्य-वेला में एकांत स्थान पर एक दीप प्रज्ज्वलित करें। पांच मिनट, दस मिनट या पद्रंह मिनट उसे एकाग्रता के साथ निहारने का प्रयास करें। वह अकम्प ज्योति आपके मन को भी अकम्प कर सकती है। पहले खुली आंखों से उसे निहारें, फिर उस ज्योति को अपनी ही नेत्र से छोटा करें। जैसे-जैसे आप उसे छोटा करते जायेंगे, वह धुंधली पड़ती जायेगी। आंख बंद करने के बाद दोनों भौहों के बीच ललाट पर अपनी दृष्टि लगाकर तब तक देखते जायें जब तक भीतर में निर्धूम ज्योति का अभ्यास न हो जाये। बाहर की ज्योति का सहारा लेकर, भीतर की ज्योति को प्रगट करने की यह सामान्य प्रक्रिया है। इसी तरह खिलते हुए फूल को निहारना, झरने से बहती जलधारा को निहारना या मूर्ति को देखना, ये सब प्रक्रियाएँ भी हमारी मानसिक एकाग्रता में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। प्रारम्भ में फूल बाहर खिलेगा और अंत में भीतर। क्रमिक अभ्यास से आप पायेंगे जो जलधारा बहिर्मुखी है, वह अंतर्मुखी होती जा रही है। मूर्ति के परमात्मा को निहारते-निहारते तुम अपने भीतर परमात्मा को प्रगट कर लोगे। जैसे अशुभ तत्त्व का चिन्तन हमारे भीतर अशुभ तत्त्व को मूर्त रूप देता है वैसे ही शुभ भी मूर्त रूप ले सकता है। क्योंकि मन का स्वभाव है वह जिस किसी वस्तु तत्त्व या पदार्थ का चिन्तन करता है, उसे अपने भीतर मूर्त रूप भी दे देता है। अगर एक माँ विदेश में रहने वाले पुत्र के बारे में सोचती-विचारती है, तो उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छवि स्वतः मन में हो जाती है। वैसे ही हम किसी ज्योति, पुष्प, मूर्ति या इसी तरह के किसी अन्य तत्त्व का चिन्तन करें तो वह तत्त्व भी हमारे भीतर आविर्भूत होगा। जब यहाँ तक हम विकास कर लें, तो नाभि या नासिकाग्र में अपनी दृष्टि एकाग्र करने का प्रयास करें। इससे भी चैतन्य जागरण में सहायता मिलती है।

मन को एकाग्र करने में, शब्द श्रवण भी काफी उपयोगी रहते हैं। कानों में अंगुली डाल कर भीतर के शब्दों को सुनने का प्रयास करें। सर्वप्रथम भवरों का गुंजार या पक्षियों का कलरव सुनाई देगा, धीरे-धीरे मीरा के घुंघुरुओं की थिरकन तुम्हारे मस्तिष्क में गूंजने लगेगी, घुंघुरु बजेंगे, शंखनाद होगा, घंटे बजेंगे, ताल बजेगी, भेरी मृदंग और नफीरी की ध्वनि सुनाई देगी ! इस प्रकार के विभिन्न शब्द सुनाई देने पर 'ऊँ' भी भीतर गूंजने लगेगा। इसी 'ऊँ' में से, तुम शून्य को प्रगट करोगे, उस शून्य का नाम ही ध्यान है, समाधि है।

महावीर कहते हैं, स्थिर अध्यवसान—मानसिक एकाग्रता ध्यान है। महावीर सिद्धयोगी थे, ध्यान के मार्ग में काफी दूरी तय की थी और यह जो उनका सूत्र है वह बारह वर्ष की ध्यान-यात्रा का निचोड़ है। महावीर चाहते हैं व्यक्ति मन को एकाग्र करे, अनेक से एक में लौट आये, अहं में अर्हम् को पैदा करे ताकि वह समाधि के द्वार पर दस्तक दे सके। महावीर साधना का मार्ग भी ध्यान को स्वीकार करते हैं और मार्गफल भी। अगर महावीर की दृष्टि में हम ध्यान की महिमा को निहारना चाहें तो इतना ही कहना चाहूँगा जैसे, मनुष्य के शरीर में मस्तिष्क महत्त्वपूर्ण है, वृक्ष में जड़ महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही साधना के समस्त आयामों में ध्यान महत्त्वपूर्ण है।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोदय हो साक्षीभाव का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

''ध्यान कृत्यों से छुटकारा नहीं दिलाता, कर्तृत्व-भाव से दिलाता है। एक आम नागरिक की तरह, ध्यानी भी वे सभी कृत्य करता है जिनकी जीवन में अनिवार्यता है, पर दिशा भिन्न होती है। वहाँ नजरें वे नहीं होतीं जिनमें संसार की छाया हो। उसके हर कृत्य में एक सजगता होगी, साक्षी-भाव का सहारा लिये। उस साधक के द्वारा अगर मक्खी को भी उड़ाया जा रहा है, तो कृत्य इतना सहज सरल होगा मानो मक्खी अपनी ही आत्मा हो।''

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर और मन—जीवन-विज्ञान के दो मुख्य मुद्दे हैं। शरीर अपने-आप में एक समाज है। चित्त, मस्तिष्क, विचार वगैरह मन एवं मन से जुड़े घरेलू रिश्तेदार हैं।

शरीर सूक्ष्म परमाणुओं की सांठगांठ है। इसलिए वह वट-बीज से, बरगद की बढ़ती-घटती कहानी का दस्तावेज है।

मन शरीर के अन्तर्गत है, किन्तु इसकी रचना शरीर से काफी बारीक है। शरीर के निर्माण में जितने परमाणुओं का सहयोग लिया जाता है, उससे सौ गुने परमाणुओं की मदद ली जाती है, मन के सर्जन में।

शरीर के निर्माण में कुछ ऐसे परमाणु होते हैं, जो उसे बौना या लम्बा कर देते हैं; काला या गोरा कर देते हैं। अनेक लोग गेहुँए भी दिखाई देते हैं। गेहुँआ रंग तो, काले-धोले परमाणुओं की कमोबेश परिणति है। बनावट के प्रथामिक चरण में तो कुछ परमाणु ही मिली-जुली व्यवस्था बैठाते हैं, पर समय की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते दूसरों का भी सहयोग एवं शुभाशीर्वाद लेना प्रारम्भ कर देते हैं। भोजन, पानी, हवाखोरी आदि के अन्तर्गत ये स्वयं के कल-कारखाने का विस्तार करते हैं।

मन जीवन की विशिष्ट उपलब्धि है। शरीर की उपलब्धि को नकारा नहीं जा सकता, किन्तु मन की उपलब्धि मनुष्य के लिए हिमालयी ऋषियों को प्राप्त होने वाली उड़न-खटोले-सी ऋद्धि है।

किसी चौपाये और दोपाये के बीच शरीर को केन्द्र बिन्दु बनाकर, किसी बड़े भेद-विज्ञान को प्रतिमूर्त नहीं किया जा सकता। जानवरों की सभी नस्लों को बिसरा भी दिया जाए, तो भी वन-मानुष, रीछ, बन्दर, या लंगूर की शक्ल का, आदमी के साथ तालमेल बैठाया जा सकता है। कान, आँख, नाक, मुँह या शरीर के अन्य अवयव मनुष्य और जानवर के बीच करीबी से शरीर साम्य नजर मुहैय्या कराते हैं। फिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी यदि समीक्षक बीच-बचाव करे तो, दोपाये के शरीर की इतर सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए, चौपाये की बजाय लाजवाब और बेशकीमती है ।

अनुभव की गहराई, कल्पना की ऊँचाई, संस्कार की लम्बाई और बोध की चौड़ाई ही खासकर शरीर की एक जैसी नस्लों के मध्य अलगाव-रेखा खींचती है ।

इसलिए मनुष्य-शरीर का होना भी एक बड़ा चमत्कार है । इस चमत्कार का लाभ न उठाना सीधी बगावत है । अपनी महान् उपलब्धि पर अंहकार न हो, पर सन्तोष करते हुए उसका उपयोग अवश्य हो । मनुष्य शरीर में ऐसे अनेक तत्त्व हैं, जिनकी गतिविधियां प्रतिपल चलती रहती हैं, पर उनका दर्शन अशक्य है । वे मात्र अनुभव गोचर ही हैं। आत्मा, चित्त, मन आदि वे सूक्ष्म तत्त्व हैं जिन्हें चीर-फाड़ करके भी देखा-दिखाया नहीं जा सकता एवं जिनके शरीर से भिन्न होने पर, शरीर मात्र एक पिंजरा भर रह जाता है ।

शरीर, आत्मा और मन ये तीनों एक दूजे से जुड़े हैं । देह एवं मनोमुक्ति ही मोक्ष है । शरीर और आत्मा का सीधा सम्बन्ध है । मन इन दोनों के बीच का वह पहलू है, जो क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए शरीर और आत्मा, दोनों को प्रेरित करता है । अतः साधना-मार्ग में देह-दण्डन एवं आत्म-दण्डन पर कम, मनोदण्डन पर अधिक दबाव डाला गया है। बन्धन एवं मुक्ति दोनों का मूल कारण मन को स्वीकार किया गया है, 'मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।'

शरीर के पार हम मन हैं । मन उर्जा का पिंड है । दिनरात भटकते मन को अगर सही दिशा मिल जाये, तो उसी मन से मनोविज्ञान पैदा हो सकता है, और उसी मन से ऊपर उठने की चैतन्य क्षमता । हमें मन को मारना नहीं, साधना है । वीणा को तोड़ना नहीं, तारों को जोड़ना है ।

जबसे इस दुनिया में मानव-देह अवतरित हुई है, देह में आत्म-शक्ति प्रकट हुई है, तभी से मन इन दोनों के साथ जुड़ा हुआ है । शरीर की क्रियाएं करने के लिए मन प्रेरक है, वहीं आत्म-शक्तियों को दबाने में भी मन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । ध्यान हो या योग, पूजा हो या प्रार्थना, सभी में मनोनिग्रह महत्वपूर्ण है । मन का निग्रह करना कठिन है, पर अभ्यास व वैराग्य से यह भी शक्य है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच रहने वाला विशेष तत्त्व है, कहने में यह भले ही जड़ हो, लेकिन कभी-कभी तो इसकी शक्ति आत्म-शक्ति को भी दबा देती है। चंचल अवस्था में इसकी गति जहां हर गति से बढ़कर है, वहीं शांत मन ध्यान में और अधिक सहयोगी होता है। मन विकारी है। इसका कार्य ही संकल्प-विकल्प करना है। यह जिसको भली-भांति ग्रहण करता है, स्वयं उसी में तदाकार भी हो जाता है।

अतीत के खण्डहर और भविष्य की कल्पनाएं यही जिन्दगी है। मन, अतीत और भविष्य के बीच का वह पेंडुलम है, जो कभी अतीत की ओर जाता है तो कभी भविष्य की ओर। बीते को बिसराना और भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त होना, वर्तमान में जीने के लिए उठाये जाने वाला पहला कदम है। चाहे अतीत हो या भविष्य–दोनों ही व्यक्ति को भटकाते हैं। साधक वह है, जो सजगता के साथ वर्तमान का उपयोग करता है। जिंदगी की जिंदादिली वर्तमान का उपयोग करने में ही है।

अतीत की पुनर्वापसी असंभव है और भविष्य की आकांक्षाओं की पूर्ति हाथ के बाहर है। ऐसी स्थिति में वर्तमान का पाई-पाई उपयोग, जीवन में अहोभाव पैदा कर सकता है। वर्तमान में जीना, मन की चंचलता को समाप्त करता है। मन को वही बदल सकता है, जिसने बदलने का अभ्यास किया है। व्यक्ति वर्तमान की चिंता कम और भविष्य की अधिक करता है, यह जानते हुए भी कि आनेवाला कल उसका निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी।

अगर पुनर्जन्म का सिद्धांत सही है, तो कहना पड़ेगा कि व्यक्ति हर जन्म में ही बीते कल को याद करता रहा है और आने वाले कल की चिन्ता करता रहा है। भविष्य के वैभव को, सपनों में निहारकर वर्तमान खोता रहा –

न कोई जादा न कोई मंजिल न रोशनी का सुराग।
भटक रही है खलाओं में जिंदगी हर बार॥

जिंदगी में कोई रास्ता तो हाथ लगा ही नहीं। पता नहीं कितनी दफा अंधेरी घाटियों में जिंदगी खो चुके हैं, लेकिन न तो मंजिल हाथ लगी, न रोशनी का सुराग।

व्यक्ति राहत के लिए स्वयं मंजिलें बनाता है। चाहे वे मंजिलें और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुकाम मात्र घरौंदे ही हों, फिर भी व्यक्ति उस झूठ में भी सच की परछांई देखता है। नीत्से ने सच कहा है, 'व्यक्ति झूठ के बिना जी नहीं सकता।'

व्यक्ति झूठे सपने देखता है, झूठे जाल बुनता है और औरों के सहारे चलने वाली जिंदगी को अपनी जिंदगी समझता है। जब कोई व्यक्ति संसार-सागर को तैरने के लिए हाथ चलाता है तब लोग रोते हैं, माँ-बाप हाय-तौबा मचाते हैं, खुदकशी करने की धमकी देते हैं और जब कोई डूबने की तैयारी करता है तो, दुनिया उसे धक्का मारती है। संन्यास के लिए बढ़ने वाले कदम को रोका जाता है और संसार की ओर बढ़ने वाले कदम को सहारा दिया जाता है।

संसार तो एक बाजार है। क्या नहीं मिलता है यहाँ ! स्वयं को छोड़कर सभी कुछ तो मिलता है। जो पाने योग्य है उसे छोड़कर, सब कुछ मिलेगा दुनिया में। जो कुछ मिलता है संसार में, सब कुछ वह है जिसे पाने पर, पाने की चाह और फैलती जाती है, 'जल कुछ ऐसा मिलता है कि प्यास घटती नहीं, जलन बुझती नहीं, तृप्ति आती नहीं।'

जिसे पाकर, संसार में सब कुछ पाने की चाह चली जाती है, बस वह संसार में नहीं मिलेगा। उसकी बिक्री बाहर नहीं, अपने अन्तर्-जगत में हो रही है।

मनुष्य मन उस बच्चे-सा है, जो मेले में जाकर सब कुछ पाना चाहता है। हर चीज को खरीदने के लिए ठिठक जाता है। बच्चा सांझ ढलते सारी चीजें भी खरीद ले, उनसे कुछ समय के लिए आशा भी बंध जाती है, पर अगले दिन फिर कुछ पाने की इच्छा होती है। मन भी इसी प्रकार पुनरुक्ति करता है। मन विविध जाल बुनता है। कई संबंध स्थापित करता है। कईयों से गलबांही करता है तो कइयों से कट्टी। जोड़-तोड़ में कई रिश्ते बनते-बिगड़ते हैं। जब जन्म भी अपना नहीं, मौत भी अपनी नहीं, तो ये बीच के रिश्ते-नाते अपने कैसे हो सकते ह? सब मन की तरकीबें है, मन के जाल हैं। तभी तो कबीर ने कहा—मन के जाल हजार।

व्यक्ति भविष्य की चिंता में खोया रहता है। स्वर्ग की कल्पनाएं करता है। सोचता है, स्वर्ग में अपार ऐश्वर्य को प्राप्त करूंगा। जिन अप्सराओं का अब तक नाम सुना है, उनके साथ जीऊँगा, स्वर्ग में आखिर मौज-मस्ती के सिवा है ही क्या ? पर, स्वर्ग की कल्पनाओं में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खोने वाला इंसान स्वर्गीय होने को कहाँ राजी है ? उसे भरोसा है कि मर कर वह स्वर्ग में जाएगा, लेकिन फिर भी मौत से घबराता है। जो होता है सब कुछ मजबूरी में होता है।

सब कुछ मन की चंचलता का परिणाम है। मन भविष्य के लिए व्यक्ति को भटकाता है और जब भविष्य वर्तमान बन जाता है तो, मन उसे अस्वीकार कर देता है। कल चैतन्यमूर्ति, मन के संबंध में ही चर्चा कर रहे थे और मन की सजगता के बारे में, कई जिज्ञासाएं भी। मन की सजगता के बारे में कृष्णमूर्ति का सिद्धांत काफी महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं 'चॉयसलैस अवेयरनेस' यानि चुनाव रहित सजगता, ऐसी जागरूकता जिसमें अच्छे-बुरे का चुनाव न हो, स्वर्ग-नरक का चुनाव न हो। क्योंकि चुनाव, केवल एक के प्रति राग की अभिव्यक्ति ही नहीं है, अपितु दूसरे के प्रति द्वेष की भी अभिव्यक्ति है। इसमें एक को नकारना है, दूसरे की स्वीकार करना है। अगर खन्ना को मोहर लगाई, तो अपने आप सिन्हा को नकार दिया। इसीलिए कृष्णमूर्ति कहते हैं, 'सजगता, चुनाव रहित हो।'

मन की परेशानी का मूल कारण ही चुनाव है। जो प्राप्त है, उसमें संतुष्टि नहीं है और जो अप्राप्त है, उसके लिए तृष्णा है। जो है, उसमें तृप्ति यही वर्तमान में जीना है।

घर से पत्नी को छोड़कर ऑफिस की ओर रवाना हुए, पत्नी ने मुस्कुराते हुए ऑफिस जाने के लिए विदा दी, पर जैसे ही वहां किसी और को देखा, उसके साथ आंखें दो-चार कीं, कि चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। अब घरवाली में सौ दोष और उसमें उतनी ही विशेषताएं दिखाई देने लगीं। जिस घर में रह रहे हैं कई दशकों से, वहीं हम कभी दुखी होते हैं, कभी सुखी। एक पड़ोसी का सात मंजिला मकान आर्थिक योग्यताओं पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है, वहीं दूसरे पड़ोसी की झोंपड़ी हमारी योग्यताओं को बढ़ावा देती है। व्यक्ति चुनाव करता है। सात मंजिले मकान को देखकर जहां उसकी तृष्णा जाग्रत होती है और वह स्वयं को दुःखी महसूस करता है, वहीं झोपड़ी को देखकर उसे आत्मसंतुष्टि होती है यह सोचकर कि मैं उससे बढ़कर हूँ।

परेशानी मन की है, मन को है, मन से है। मन का मार्ग शांति तक है ही नहीं। सुख मिलता है, पर दुख का पुट साथ लिए। स्वर्ग मिलता है पर नरक की प्रतीति साथ लिए। फूल तो हाथों में आया है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर काँटे उससे पहले ही गड़ गये हैं। राग और द्वेष मन के दो विकल्प हैं। ये ही दो ऐसे तत्त्व हैं, जो आम संसारी को रागी, साधक को विरागी और साध्य को वीतरागी सिद्ध करते हैं। राग, विराग और वीतराग में फर्क है, इसके रहस्य को समझें। राग संसार है, विराग संन्यास है और वीतराग समाधि है। विराग में राग-मुक्ति तो होती है लेकिन द्वेष-मुक्ति नहीं। स्थिति ऐसी होती है, जब संसार में थे पैसे से राग था, जब संन्यास में हैं तो उसी से द्वेष हो गया। जब दुनिया में थे तो स्त्री के प्रति आसक्ति थी और जब संन्यास में आए तो उसी के प्रति द्वेष पैदा हो गया, निरादर की भावना पैदा हो गई। वीतरागी साधक वह है, जो हर उपलब्धि में भी साक्षी-भाव में जी रहा है।

ऐसा ही हुआ, गुरु और शिष्य, दोनों पदयात्रा कर रहे थे। बीच में नदी आ गई। नदी में पानी अधिक गहरा नहीं था, फिर भी नाभि तक तो था ही। दोनों ने सोचा, चलो, नदी पार कर लें। पास में एक युवती खड़ी थी। उसने गुरु से कहा, 'महाराज ! आप उस पार जा रहे हैं। मुझे भी उस पार जाना है, पर नदी पार करते भय लगता है। कृपया, मेरा हाथ पकड़कर उस पार ले चलें।

गुरु आगबबूला हो गये। कहने लगे, 'तुझे शर्म नहीं आती है, हम साधु जो स्त्री को छू भी नहीं सकते हैं, भला हाथ कैसे पकड़ सकते हैं?' गुरु ने स्त्री को बुरा-भला कहा और पार जाने के लिए पानी में उतर गया।

शिष्य अभी भी इस पार था युवती ने उससे भी प्रार्थना की। उस युवा संन्यासी ने सोचा, भला इसे उस पार ले जाने में क्या आपत्ति है और यह भी सोचा जब दोनों को ही नदी पार करना है तो क्यों न एक के ही वस्त्र गीले किए जाएं। अगर उसे मेरा हाथ पकड़ने में कोई खतरा नहीं है, तो मुझे उसका हाथ पकड़ने में क्या खतरा ? उसने युवती को कंधे पर बैठाया और नदिया के उस पार ले गया। युवती ने आभार ज्ञापन किया और अपने घर की ओर रवाना हो गई और साधु अपने मार्ग पर चला गया। तीन-चार मील चला होगा कि गुरु ने पूछा 'तूने उसे कंधे पर क्यों बैठाया, क्या यह साधु का धर्म है ?'

शिष्य ने कहा, 'किसे ?'

गुरु कहने लगा, 'जिसे मैंने छूने से भी इंकार कर दिया था उस युवती को।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य मुस्कुराया। कहने लगा, 'गुरुवर ! आपमें और मुझमें यही फर्क है। मैंनें उस युवती को जहां उतारा वहीं भूल गया और आप उसे अभी भी ढोए जा रहे हैं।

पता नहीं, मन कब विचलित हो जाए। ऐसा न समझें कि एक पच्चीस साल के युवक का मन भटक सकता है। हकीकत तो यह है कि एक साठ साल के वृद्ध का मन भी भटक सकता है। एक युवक तो अपने विचलित मन को, अपनी इच्छा-शक्ति और आत्म-शक्ति से शांत कर देगा, लेकिन किसी वृद्ध का पांव फिसल गया तो सम्हलना उसके हाथ में नहीं रहेगा। मैंने कहा, 'राग और द्वेष दोनों विकल्प हैं।' यह सच है और यह भी सच है कि जिससे राग होता है, उसी से द्वेष होता है। बिना राग के, द्वेष कभी पैदा ही नहीं हो सकता। भला जिसके साथ संयोग नहीं वहां वियोग कैसे होगा, जहाँ संबंध नहीं वहाँ विच्छेद कैसे होगा, वियोग और विच्छेद तो संयोग और संबंध का परिणाम है। मृत्यु-जन्म का परिणाम है। जन्म के अभाव में मृत्यु कभी घटित हो ही नहीं सकती। बिना राग के द्वेष कैसा ? इसलिए साधक को वीतरागी होने की प्रेरणा दी गई, वीतद्वेषी नहीं।

जो द्वेष-मुक्त है, वह राग-मुक्त हो यह आवश्यक नहीं है लेकिन जो राग-मुक्त है वह तो द्वेष-मुक्त होगा ही। इसलिए मन को शांत करने के लिए और उसके भटकाव को रोकने के लिए, राग-मुक्ति आवश्यक है। मन की गति उस ओर होती है जहां राग है , आसक्ति है, सम्मोहन है। जिसे कभी देखा नहीं, सुना नहीं, जिससे मेल-मिलाप नहीं हुआ, उस ओर मन भला कैसे जाएगा। जिसकी याद में आज आंसू बहा रहे हो, जरा सोचें, सम्बन्ध होने से पहले क्या कभी उसके लिए एक तरंग भी आई थी। चाहे बाटा हो या बासमती या बबंई, जिस किसी के साथ सम्बन्ध है, मन उस ओर ही गति करता है। इसलिए चित्त की चपलता को शांत करने के लिए सम्मोहन से मुक्ति आवश्यक है। दुनिया के जितने भी सम्बन्ध हैं, सब संयोग हैं और संयोग कभी स्वभाव नहीं हो सकता। कल जिसने जान से मारने की कोशिश की थी, आज उसी पर अपना दिल दिया जा रहा है। मन का क्या, आज जिसके साथ गलबांही कर रहा है कल, उसी को धक्का मार देगा। आज जिससे हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ा रहा है कल, उसी को हाथ दिखा देगा। यह मन की उलटबाजी है। गिरगिट का रंग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भला एक जैसा हो सकता है ? उसका रंग तो वैसा ही होगा, जहां वह है।

ऐसा नहीं है कि केवल गिरगिट ही रंग बदलता हो, हर इंसान अपना रंग बदल रहा है। कल तक जो मित्र थे, आज शत्रु हो गये हैं। कुछ दिन पहले तक जो प्रशंसा कर रहे थे, आज निन्दा कर रहे हैं। राग द्वेष में बदल रहा है , मैत्री दुश्मनी में बदल रही है और करुणा घृणा में बदल रही है। ये सब की सब मन की तरकीबें हैं। आज के सूत्र में महावीर इन्हीं मन की तरकीबों से छुटकारा दिलाना चाहेंगे और प्रवेश कराना चाहेंगे, ध्यान में। आत्मा की उस दशा में, जहाँ न शरीर रहता है , न मन रहता है और न वचन रहता है। आज का सूत्र है–

जह चिर संचियमिं धन-मनलो पवण सहिओ दुयं दहइ।

तह कम्मेधणमियं, खणेण झाणोनलो डहइ ॥

जैसे चिरसिंचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि, अपरिमित कर्म-ईंधन को क्षणभर में भस्म कर डालती है।

यह सूत्र सम्पूर्ण महावीर-दर्शन का सार है। साधना की वह यात्रा है, जो गंगासागर से गंगोत्री की ओर जाती है। महावीर ने इस सूत्र में ध्यान रूपी अग्नि को प्रज्ज्वलित करने की प्रेरणा दी है। ध्यान समस्त आगमों का सार है चाहे भक्ति हो, सेवा हो, पूजा हो, प्रार्थना हो सब ध्यान के विविध रूप हैं। महावीर ध्यान के सहारे कर्म ईंधन को जलाना चाहते हैं, समाप्त करना चाहते हैं। ध्यान का अर्थ है—द्रष्टाभाव, साक्षीभाव। ध्यान वहां है जहां व्यक्ति अपने आप में लौट आता है। महावीर ध्यान के माध्यम से सन्तुलन की भाषा सिखा रहे हैं। जैसे-नृत्यकार रस्सी पर सन्तुलन को खोने नहीं देता; पतली-सी रस्सी पर पांव चलते हैं लेकिन नृत्यकार न इधर गिरता है, न उधर गिरता है। जो ध्यान की रस्सी पर चलता है वह जीवन का नृत्यकार बन जाता है वह न राग की ओर गिरता है न द्वेष की ओर गिरता है, उसकी यात्रा होती है विराग और वीतराग की ओर।

महावीर ने कहा, 'ध्यान रूपी अग्नि से', ध्यान पर मैं कुछ कहना चाहूँगा। भक्ति सहज है, पूजा प्रार्थना भी सरल है लेकिन ध्यान सबसे कठिन साधना है। एक पल भी अगर पाँव डगमगा गया तो शिखर से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीधे तलहटी में पहुँच जाओगे । ध्यान कैसे करें ? मन को एकाग्र करना, ध्यान की शुरूआत है और मन से मुक्ति, ध्यान का अन्तिम चरण है। महावीर कहते हैं कि मन हमेशा निर्णय से निर्मित होता है। किसी ने सुख दिया, हमने उसके लिये शुभ कामनाएं दीं और जिसने दुःख दिया, उसके लिये बद्दुआएं दीं । जहाँ-जहाँ निर्णायक स्थिति होती है वहां-वहां मन की चंचलता और बढ़ती जाती है ।

महावीर ने प्रव्रजित होने के बाद करीब बारह वर्ष तक साक्षी-भाव और द्रष्टाभाव में जीने की कोशिश की । अगर अप्सराओं ने आकर उनके शरीर को सहलाया, तो भी ध्यान में डूबे रहे और अगर किसी ने कानों में कीलें ठोकीं, तो भी ध्यान में डूबे रहे । न अप्सराओं के प्रति राग पैदा हुआ और न ही कानों में कील ठोंकने वाले ग्वाले के प्रति द्वेष।

महावीर साधक को साक्षी-भाव में इसलिए लाना चाहते हैं क्योंकि साक्षी-भाव में पहुँचकर, साधक स्थितप्रज्ञ होता है ।

महावीर ध्यान की अग्नि से कर्म-ईंधन को जलाना चाहते हैं । कर्म ईंधन को भस्मिभूत करने का सबसे कारगर उपाय है, साक्षी-भाव में जीना । जो है, वह है, उससे अलिप्त रहना यही साक्षी-भाव है । न वहां राग होता है और न द्वेष होता है । मधुर की तृष्णा नहीं, कडुवाहट से वैर नहीं, ये सब ही तो साधकों के चरण हैं ।

साक्षीभाव कर्म-ईंधन को जलाता है क्योंकि साक्षी-भाव में राग और द्वेष दोनों का अभाव होता है और महावीर कहते हैं, 'रागो य दोसो बीय कम्म बीयं' राग और द्वेष कर्म के बीज हैं । संसार की फसल इन दो बीजों से होती है । ये दो बीज नष्ट हो गये तो अपने आप कर्म समाप्त हो जायेंगे । साक्षीभाव ध्यान है और ध्यान, कर्म रूप ईंधन को जलाने का साधन है । साक्षीभाव में किया कुछ नहीं जाता है, सब कुछ होता है, सहज स्वाभाविक ।

जीवन का विशुद्ध आनन्द होने में अधिक है, करने में कम है । जब हम कुछ नहीं करते हैं, तब आनन्द का झरना झरता है । अगर इस झरने के उत्स को ढूंढेंगे कि यह कहां से बहता है तो उलझन में फंस जाएंगे । यह हर ओर से बहता है, दसों दिशाओं से झरता है ।

ध्यान करना नहीं, होना है, जीना है । मन, वचन और शरीर तीनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से जब सभी क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं तो, ध्यान सधता है। अतः ध्यान कोई क्रिया नहीं है, आडम्बर नहीं है। हकीकत तो यह है कि क्रिया-मुक्ति ही ध्यान है। यदि क्षण भर के लिए भी हम कुछ न करें, पूर्ण विश्राम में प्रवेश करें, तो ध्यान सधेगा। अगर एक दफा भी सफलता हाथ लग गयी तो जब तक ध्यान में जीना चाहें, जी सकेंगे।

अगर एक बार व्यक्ति यह बोध प्राप्त कर ले कि अंतरंग कैसे अनुद्वेलित हो सकता है, तो वह होश को साधते हुए धीरे-धीरे अन्तर्-जगत की क्रियाएं प्रारम्भ कर देगा। सर्वप्रथम होने मात्र की कला सीखें, फिर छोटे-छोटे कृत्यों को सहजता से करने की। जैसे भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, स्नान करना आदि, इन्हें करते हुए स्वयं को केन्द्रीभूत बनाये रखना, यही ध्यान का पूर्वाभ्यास है। पाप-पुण्य क्रिया में नहीं, यतना-अयतना में है।

छोटे-छोटे कृत्यों से अपने साक्षीभाव को पुष्ट करें। एक-एक बूँद का समूह सागर बन जाता है। एक-एक किरण के जुटने से महासूर्य का जन्म हो जाता है। ऐसे ही छोटी-छोटी समझ, छोटी-छोटी अन्तर्-दृष्टि को एकत्रित करें, यही धीरे-धीरे समाधि के राजमार्ग पर पहुँचाएगी।

जिन लोगों ने ध्यान को जीवन-विरोधी या कृत्य-विरोधी माना वे अपने-आपसे विरोध कर बैठे हैं। ध्यान न तो जीवन से पलायन है और न ही भगोड़ापन। ध्यान तनाव-मुक्ति एवं चित्त-शुद्धि का स्वाभाविक साधन है। ध्यान में जीवन का प्रवाह थमता नहीं है और अधिक त्वरा से जारी रहता है, जीवन कहीं अधिक आनन्दपूर्ण, स्पष्टतापूर्ण, और सृजनात्मकतापूर्ण होता है। विशेषता यह रहती है कि सब कुछ करते हुए भी, आत्मा निर्लिप्त रहती है। वह अपने निकटवर्ती सूत्रों के साथ घटित होने वाली घटनाओं का सहजतया अवलोकन करती है, पर्वत के शिखर पर खड़े हुए द्रष्टा की भांति।

यह बात गौरतलब है कि ध्यान कृत्यों से छुटकारा नहीं दिलाता, कर्तृत्व-भाव से दिलाता है। एक आम नागरिक की तरह, ध्यानी भी वे सभी कृत्य करता है जिनकी जीवन में अनिवार्यता है, पर दिशा भिन्न होती है। वहाँ नजरें वे नहीं होतीं जिनमें संसार की छाया हो। उसके हर कृत्य मे एक सजगता होगी, साक्षी-भाव का सहारा लिये। उस साधक के द्वारा अगर मक्खी को भी उड़ाया जा रहा है, तो कृत्य इतना सहज सरल होगा मानो मक्खी अपनी ही आत्मा हो। मक्खी का उड़ना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न उड़ना गौण है, यहाँ मुद्दे की बात यह है कि उड़ाते समय हम कितने सजग हैं।

साक्षीभाव कैसे आत्मसात् किया जाये ? प्रश्न महत्वपूर्ण है। वास्तव में साक्षित्व ध्यान की आत्मा है। साक्षीभाव खोया यानि ध्यान से चूक गये, मन की गतिविधियाँ हम पर हावी हो गयीं। जैसे, उपवन में कोयल कुहु-कुहु कर रही हैं, हम सुन रहे हैं। इनमें दो बातें हैं एक बोल रही है, एक सुन रहा है। ऐसा लगता है इस कृत्य में दो तत्व सक्रिय हैं। लेकिन इन दोनों के बीच एक और तथ्य है, जिसे हम पहचान नहीं पाते, वह है साक्षित्व।

हम क्या देख रहे हैं, यह गौण है। हम वृक्ष को भी देख रहे हैं, नदी को भी देख रहे हैं और आकाश को भी देख रहे हैं। इन सबके साथ देखना यह है कि हम किन नजरों से देख रहे हैं। हम साक्षीभाव से फिसल तो नहीं गये हैं। अगर हम नहीं फिसलते हैं, तो परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे दृष्टाभाव सघन हो जाएगा, थिर.. अकंप... धीरे-धीरे रूपान्तरण होगा.... वे सब वस्तुएँ विलीन हो जाएँगी। विकास द्वार उद्घाटित होंगे। चेतना आत्म-लीन हो जाएगी, दृष्टा ही दृश्य और ज्ञाता ही ज्ञेय हो जाएगा।

हम भोजन करते हैं। भोजन को कभी पचाना नहीं होता अपने आप पचता है, जैसे अपने आप, सूर्य सुबह उदित होता है और सांझ ढलते डूब जाता है, ऐसे ही भोजन की प्रक्रिया है, अगर शरीर सही सलामत है, तो सुबह का भोजन शाम को और शाम का भोजन सुबह पच जायेगा। जैसे यह प्रक्रिया अपने आप संचालित होती है, ऐसी ही विचार और ध्यान की प्रक्रिया है। विचारों के प्रति मूर्च्छा न होना, यह ध्यान का भोजन है और पचना अपने आप होता है। पचना यानि भोजन का रक्त बनना, ध्यान की गहराई में उतरना, जैसे भोजन करके पाचन-क्रिया शरीर पर छोड़ दी जाती है वैसे ही ध्यान करके समाधि की क्रिया, चैतन्य-शक्ति के हाथ छोड़ दी जानी चाहिये।

यद्यपि मनुष्य स्वयं भोजन नहीं पचाता, शरीर पचाता है, पर वह उसकी पाचन प्रक्रिया में बाधा अवश्य डाल देता है। ध्यान के सम्बन्ध में भी यही सत्य है आप ध्यान में गहरे नहीं उतर सकते, अगर उतरने की घड़ी भी आ जाये तो बाधा डाल देते हैं। विचारों के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव यही ध्यान की बाधा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विचारों से मुक्ति का उपाय क्या है ? महावीर इसके लिए कहते हैं, साक्षी-भाव । महावीर के ध्यान-दर्शन का सार है यह । जब तक साक्षी भाव नहीं आयेगा, तब तक विचारों से मुक्ति सम्भव नहीं है और बिना विचार-मुक्ति के ध्यान में प्रवेश ही कैसे होगा ? साधारणतः प्रत्येक मनुष्य विचार की गति के साथ गतिमय होता है । विचारों से पैदा होने वाली अशान्ति का अनुभव उसे इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि गति पर रोकथाम नहीं लगायी जाती । जब व्यक्ति रुककर, दौड़ को थामकर, विचारों को देखता है तभी व्यर्थ की भाग-दौड़ का पता चलता है । जो स्वयं विचारों की भाग-दौड़ में शामिल है, भला उसे कैसे ज्ञान हो पायेगा, भाग-दौड़ की व्यर्थता का ?

विचारों की प्रक्रिया के प्रति आप मात्र दर्शक का भाव रखें । साक्षी का भाव रखें, सिवा देखने के और कोई सम्बन्ध ही नहीं है विचारों से। जब विचारों के बादल मन के आकाश को घेरें या उसमें गति करें, तो उनसे स्पष्टतः पूछा जाये कि तुम कौन हो और तुम्हारा अस्तित्व क्या है ? क्या तुम मेरे हो ? स्पष्टतः उत्तर मिलेगा, हम तुम्हारे अतिथि हैं, तुम्हारे नहीं हैं ।

विचारों को साक्षी भाव से देखने से क्रमशः उनसे सम्बन्ध टूटेगा। जब वासना उठे या विचार उठे, तब ध्यान इस बात का रखें कि वासना उठ रही है या विचार उठ रहे हैं । क्रमशः इस प्रकार आप पायेंगे कि वासना विगलित हो रही है और विचार भी । साक्षी-भाव में, इस निर्विचार समाधि में, विचार अपने आप विलीन हो जायेंगे और विचार-शक्ति का उद्‌भव होगा । इसी विचार शक्ति का नाम, प्रज्ञा है।

महावीर ने साक्षी-भाव को, जीवन में पल-पल घटित करने की प्रेरणा दी । इसी को ध्यान और त्याग कहा । इसीलिए महावीर ने साधना का श्री गणेश सम्यक् दर्शन से किया । अगर दर्शन-शुद्धि है तो जीवन-शुद्धि है, बिना दर्शन के न ज्ञान होता है, न चारित्र होता है, न तप होता है। इसलिए महावीर ने सुनने और पढ़ने पर ज्यादा जोर नहीं दिया, उन्होंने देखने पर जोर दिया । चिंतन से अधिक दर्शन को बल दिया । विचार नहीं दर्शन । जैसे-जैसे दर्शन शुद्धि होती है वैसे-वैसे विचार क्षीण होते जाते हैं । जब व्यक्ति साक्षी में जीता है तो स्वप्न स्वयं विलीन हो जाते हैं ।

दीप जलेंगे, बुझा करेंगे, तारों में टिमटिम होगी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह अखंड है, जो साक्षी है, ज्योतिर्मयता अविचल होगी ।

जीवन में उतार-चढ़ाव स्वाभाविक है । जैसे चाँद में ह्रास और विकास होता है, जीवन के साथ भी ऐसा ही है । परिवेश भी बदलते रहते हैं । अच्छा-बुरा, हर्ष-विषाद, सुख-दुख, सब कुछ घटित होता रहता है । साक्षीत्व अंगीकार करने का अर्थ यही है कि जो हो रहा है, वह नियतिकृत है, स्वयं को उससे न जोड़ें । जैसे ही खुद को जोड़ोगे, तुम उस क्रिया की प्रतिक्रिया बन जाओगे । ध्वनि की प्रतिध्वनियाँ तुम्हें प्रभावित करेंगी । 'दीप जलेंगे, बुझा करेंगे, तारों में भी टिमटिम होगी,' जलना-बुझना, उगना-टिमटिमाना, यह सब तो धरती के पटल पर अनवरत जारी रहते हैं । ज्योति साक्षी है, जो सिर्फ प्रकाशवन्त रहती है। हम अपने स्वभाव को, जग-बुझ सा न बनायें; ज्योतिर्मय बनायें । जो होता है, उसे होने दें, अपने आप को न जोड़ें ।

अगर आप ध्यान करना चाहतें हैं, तो एक बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना कि ध्यान में हमारे सामने कुछ भी न हो, न अतीत की स्मृतियाँ हों, न ही भविष्य की कल्पनायें । स्मृति और कल्पना दोनों को शून्य होने दें, अतीत भी मिट जाये और भविष्य भी । तब न समय होगा न आकाश होगा । उस क्षण जब कुछ नहीं होगा, उसी का नाम ध्यान है। वहां निर्विचार चेतना होगी । यहाँ से वह राह प्रारंभ होगी जहाँ से शून्य उद्घाटित होगा, मनुष्य को आँखें मिलेंगी, आत्मा को आत्मा मिलेगी।

क्रोध, कामना, वासना, तृष्णा, इन सबकी उत्पत्ति होनी स्वाभाविक है । पर सहज साधना, ध्यान, साक्षी-भाव और ध्यान से इन्हें गिराया जा सकता है । आज क्रोध आया है, वासना जगी है, सर्वप्रथम इन्हें समझें, फिर जगें और फिर ध्यान करें। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञाता है अपने स्वभाव का, अपनी आदतों का, अपने अतीत का। ध्यान और साक्षी-भाव में जीते हुए, उद्भूत क्रोध को होश पूर्वक विसर्जित करो । अगर दमन के मार्ग से वासना को दबाया गया, तृष्णा को रोका गया या क्रोध के साथ बलात्कार किया गया तो यह बार-बार पैदा होगा । इसको बोध पूर्वक विदा दो । द्वार-दरवाजे पर लाकर विदा दो ।

अगर यतना जग गई, होश में जीने लगे तो किसी भी त्याग के लिए कसमें नहीं खानी पड़ेंगी । होश-भरे व्यक्ति को कसमों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकता नहीं होती । वहाँ कसम नहीं, कोशिश होती है । दुनिया में कोशिशें कामयाब हो जाती हैं और वादे टूट जाते हैं ।

होश पर्याप्त है । सब कसमें होश में पूरी हो जाती हैं । अगर फिर कल वासना जगे, तो होश को साधें, आज साधा था, कल फिर साधें। धीरे-धीरे होश को बढ़ायें, वासना अपने आप विसर्जित हो जायेगी । वासना बेहोशी में जगती है, होश में कभी वासना नहीं जगती ।

ध्यान में न केवल प्रवेश करें, अपितु तल-स्पर्श भी करें । ऐसा करने में, साक्षी-भाव साथ निभाएगा ।

शुभ या अशुभ में चुनाव न करें, निन्दा या स्तुति दोनों से बचें । जो ध्यान में जीता है, उसके लिये न पाप अच्छा होता है, न पुण्य । उसका ध्येय तो कर्म-मुक्ति का होता है । दुनिया में कोई भी विचार अच्छा या बुरा नहीं होता । विचार सिर्फ विचार है । अगर अच्छे-बुरे का सूक्ष्मतम चुनाव भी प्रारम्भ कर दिया, तो यह चुनाव भी, हमारे लिये ध्यान में बाधक बन सकता है । जैसे तराजू में सही तौल वह माना जाता है, जहाँ दोनों पलड़े समान हों, काँटा स्थिर हो, वैसे ही ध्यान में भी, तराजू के पलड़े–शुभ और अशुभ का सन्तुलन आवश्यक है । ध्यान का काँटा स्थिर होते ही सब तिरोहित हो जायेंगे। शुभ-अशुभ, निंदा-प्रशंसा, अच्छा-बुरा, पुण्य-पाप सब समाप्त हो जायेंगे।

अशान्ति का मूल मन है, जो आत्मा का निजी नहीं आरोपित अंग है । जहाँ मन वहाँ अशान्ति है । इसलिए शान्ति की दिशा में मात्र विचार से, अध्ययन, मनन और चिंतन से कुछ भी नहीं होगा क्योंकि ये सब भी मन की ही प्रक्रियायें हैं। यहाँ अशान्ति को थोड़ी देर के लिये विराम जरूर दिया जा सकता है, अशान्ति का विस्मरण किया जा सकता है लेकिन यह सब कुछ विस्मरण की मादकता है । शान्ति, मन को खोने में है, पाने में नहीं । इसलिये महावीर, विचार एवं सभी क्रियाओं के प्रति साक्षी-भाव पैदा करना चाहते हैं । पल-पल साक्षी होकर जीओ, जो भी करो साक्षी से करो, जैसे कृत्य कोई और कर रहा है हम मात्र गवाह हैं । धीरे-धीरे आप पायेंगे, भोजन न मिलने के कारण मन निर्मल होता जा रहा है । कर्ता भाव मन का भोजन है, अहंकार उसका ईंधन है । जिस दिन ईंधन समाप्त हो जायेगा उसी दिन मन तिरोहित हो जायेगा । मन की सब समस्यायें तिरोहित हो जायेंगी ।

समस्या संसार की नहीं, हमारे मन की है, मन से है । 'माइण्ड इज़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दी प्राब्लम', मन ही समस्या है। दुनिया की जितनी समस्यायें दिखाई दे रही हैं, ये सब की सब मन की प्रतिध्वनियाँ हैं। अगर एक-एक समस्या से लड़ने लग गये तो पराजित हो जाओगे। किस-किस प्रतिध्वनि से संघर्ष किया जायेगा। प्रतिध्वनियों से संघर्ष व्यर्थ हैं। संघर्ष करो उस मन से, जो सब प्रतिध्वनियों का आदि स्रोत है। शाखाओं को काटने से क्या होगा ? एक शाखा काटेंगे चार शाखायें नई पैदा हो जायेंगी, 'शाखाओं के काँट-छाँट से और अधिक आते अगूंर' शाखाओं को काटने से वृक्ष और अधिक बढ़ेगा, अगर काटना ही है तो जड़ को काटो, अगर जड़ काट दी गई तो सारी शाखाएँ अपने आप विदा हो जायेंगी।

मन जड़ है। इस जड़ को काटें ध्यान से। मन है समस्या, इसका समाधान करें ध्यान से। मन में समाधान नहीं है, समाधान है ध्यान में। मन की अनुपस्थिति का नाम ही ध्यान है और ध्यान की अनुपस्थिति ही मन है।

ध्यान के सम्बन्ध में झेन परम्परा भी गहरे तक गयी है। इनकी ध्यान पद्धति, में महावीर और बुद्ध दोनों की ध्यान परम्परा का सम्मिश्रण है। झेन का मूल शब्द भी ध्यान है। ध्यान परम्परा ही, जापान और चीन में झेन परम्परा हो गयी। इस परम्परा का मूल उद्देश्य, व्यक्ति को ध्यान के माध्यम से समाधिस्थ करना है। इस अवस्था में व्यक्ति साधारण यथार्थ को भी पार कर लेता है। एकत्व और सार्विकता का द्वंद्वात्मक तर्क ही इस अवस्था का आधार है।

झेन परम्परा ने ध्यान के माध्यम से, लोकोत्तर प्रज्ञा को अत्यन्त साधारण, पर आश्चर्यजनक अनुभवों के माध्यम से सार्थक किया। वहाँ ध्यान के अन्तिम चरण में कोई प्रतीक स्वीकार नहीं है, चाहे वह परमात्मा भी क्यों न हो। शून्य में प्रवेश के लिए परमात्मा का प्रतीक भी त्याज्य माना गया है। जापानी फकीर भोगा जसरेक तो यहाँ तक कहते थे कि शून्य के मार्ग में यदि बुद्ध भी मिल जाये तो उन्हें मार दो। क्योंकि ज्ञान के लिए प्रतीकों से परे जाना अनिवार्य है।

चाहे महावीर की गाथाएं हों या पंतजलि के ध्यान सूत्र, सभी का लक्ष्य चेतना के रहस्य को उजागर करना है। चेतना के आश्चर्यजनक गुण हैं। इसके बारे में जब चाहे तब चिन्तन नहीं किया जा सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान आत्मचिन्तन का साधन है । साधारणतः हम चेतना को शरीर की इच्छाओं से जोड़ते हैं, पर यदि ऐसा होता तो हम मात्र यंत्र ही होते।

चीन और जापान में ध्यान परम्परा के संस्थापक, बोधिधर्म माने जाते हैं । भारतीय ध्यान परंपरा को सर्वप्रथम बोधिधर्म ही वहाँ लेकर गये थे । कहते हैं एक बार सम्राट वू ने बोधिधर्म से पूछा, 'पवित्र परमसत्य क्या है ? बोधिधर्म ने कहा, 'यह शून्य है, पवित्रता का कोई अर्थ नहीं है ।' तो सम्राट ने पूछा, 'फिर सामने यह कौन खड़ा है ?' बोधिधर्म ने कहा, 'मैं नहीं जानता।' जैसे मन्त्र परम्परा में बीज, मन्त्र या अक्षर होते हैं, वैसे ही बोधिधर्म का शून्य भी, बीज शब्द है जिसका अर्थ है—परमचेतना। ध्यान इसी परम चेतना से साक्षात्कार करने का साधन है ।

महावीर ने कहा, 'जैसे चिर संचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है ।' यह उपमा ध्यान की शक्ति को उजागर करने के लिये है । चाहे लाखों लीटर पेट्रोल हो लेकिन अगर अग्नि का संस्पर्श हो गया हो, तो वह अपना अस्तित्व बचा नहीं पायेगा । जलना उसकी अनिवार्यता हो जायेगी । चाहे जितना ईंधन इकट्ठा किया हो, अग्नि उसे भी समाप्त कर देगी क्योंकि अग्नि का काम ही ईंधन को जलाना है । जैसे काल के पंजों में चाहे पूरा संसार भी फंस जाये, तो भी बच नहीं सकता, वैसे ही अग्नि के संस्पर्श से ईंधन नहीं बच सकता । महावीर साधकों के लिये, ऐसी ही ध्यान की अग्नि जलना चाहते हैं । ध्यान वह द्वार है, जो स्वयं का स्वयं से ही परिचय करवाता है । चाहे ज्ञान का यात्री हो, चाहे प्रेम का, अन्ततःतो ध्यान का सहारा ही लेना पड़ेगा । ये संसार के जितने भी मार्ग हैं, सब ध्यान के ही विभिन्न रूप हैं । ध्यान का अर्थ हुआ एकाग्रता । चाहे प्रार्थना हो, पूजा हो, उपासना हो, भक्ति हो या संन्यास हो, आखिर एकाग्रता की आवश्यकता तो होगी ही । जब तक चित्त मौन न होगा, निर्विचार न होगा तब तक पूजा, प्रार्थना और उपासना केवल शरीर और मन तक सीमित रह जायेगी, चैतन्य शक्ति से उनका सम्बन्ध जुड़ नहीं पायेगा । शक्ति, समय और संकल्प तीनों ही समर्पित कर दें ध्यान को ।

महावीर ने कहा, 'ध्यान रूपी अग्नि, अपरिमित कर्म ईंधन को क्षण भर में भस्म कर देती है ।' बड़ी गहरी बात कही है महावीर ने ; कर्म के ईंधन को जलाने में, ध्यान सर्वाधिक कारगर सिद्ध हो सकता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहे सक्रिय ध्यान हो, कुण्डलिनी, नटराज, नादब्रह्म या विपश्यना—चाहे जो ध्यान हो, आखिर सभी ध्यान मनोमुक्ति बनाम कर्म-मुक्ति के लिये ही हैं। महावीर ने भी चित्त की चंचलताओं पर काफी चर्चा की थी और ठेठ तल तक गये। बारह वर्षों तक, जो साधक ध्यान और समाधि को समर्पित रहा हो, भला उसके कर्म ईंधन क्यों न जलेंगे। जब महावीर ध्यान की परम अवस्था में पहुँचे उसी क्षण, अपरिमित कर्म ईंधन, क्षण भर में भस्म हो गया। उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिसे हम केवल ज्ञान कहते हैं।

केवल ज्ञान का अर्थ मात्र उस ज्ञान से मत जोड़ना, जो अतीत और भविष्य को जानता है। केवल ज्ञान का अर्थ है, जो वर्तमान को जानता है, वर्तमान की, अनुपश्यी है। जो केवल एक को जानता है, अपने आप को जानता है। इसलिये केवल ज्ञानी का अर्थ हुआ, जिसने अपने आप की खोज कर ली है। जगत का ज्ञाता तो हर कोई हो सकता है, लेकिन आत्मज्ञ केवल ज्ञानी ही होता है। सर्वज्ञ वह नहीं जो सबको जानता है, सर्वज्ञ वह है जो स्व को जानता है, अपने आपको जानता है। ऐसे लोगों के लिये ही तो महावीर कहा करते थे, 'जे एगं जाणई, से सव्वं जाणई।'

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जिसने एक को, अपने आपको भलीभांति नहीं पहचाना, वह दुनिया की पहचान कैसे कर पायेगा। महावीर ध्यान के माध्यम से, उस एक की पहचान कराना चाहते हैं। बिना आत्म तत्त्व की पहचान के सारी ध्यान-साधनायें ऐसी हैं जैसे बिना एक के सौ शून्यों का प्रयोग। इस साधना के मार्ग में अगर आत्मा की कूंची साथ लेकर न चढ़े, तो ठेठ ऊपर पहुँच कर भी वापस लौटना पड़ेगा क्योंकि वहाँ ताला बन्द मिलेगा। अगर चाबी भूल आये तो वापस लौटना पड़ेगा।

मैंने सुना है, दो दोस्त भारत से अमेरिका गये। किसी सत्तर मंजिली होटल में ठहरे थे। साठवीं मंजिल में उन्हें रूम मिला। रात को नाइट-शो देखने चले गये। साढ़े बारह बजे वापिस लौटे। लिफ्ट मैन से ज्ञात हुआ कि किसी कारणवश लिफ्ट खराब हो गई है। अपने रूम तक जाने के लिये सिवाय सीढ़ियां चढ़ने के कोई उपाय न था। उन दोनों ने सोचा, चलो, पैदल ही चढ़ते हैं।

रवानगी से पहले उन्होंने अपना कोट उतार कर वाच मैन को दे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिया, कहा 'यह भार हम साथ ढोना नहीं चाहते हैं, तुम अपने पास रखो, सुबह लिफ्ट सही होगी तब हमें पहुँचा देना ।'

दोनों ने चढ़ाई प्रारम्भ कर दी, करीब चालीस तल्ले पर पहुँच पाये होंगे कि रात के डेढ़ बज गये । चढ़ते-चढ़ते दोनों का सांस भर आया। फिर भी साहस कर चढ़ने लगे, सोचा अब तो बीस मंजिल ही शेष हैं। चढ़ते-चढ़ते पचास मंजिल भी पार कर गये । कुछ समय बाद जब वे पचपनवीं मंजिल पर थे,एक ने कहा, 'दोस्त, रूम की चाबी लाये हो?'

दूसरे ने कहा, 'चाबी, ओह! चाबी तो कोट की जेब में ही रह गई।' पहले ने कहा, 'सोचो दोस्त,हम पहली मंजिल पर हैं या पचपनवीं पर।'

महावीर हाथ में चाबी थमाना चाह रहे हैं । आत्मा की चाबी और चाबी को संभाल कर चलने का साधन ध्यान है अन्यथा आत्म-पहचान के अभाव में की जाने वाली साधना, मंजिल हासिल नहीं करा सकती। सारे जहाँ में भटक कर व्यक्ति वापिस वहीं पहुँचता है, जहाँ से उसने यात्रा प्रारम्भ की है । कोल्हू के बैल की तरह है उसकी यात्रा, जो सुबह से सांझ तक चलता रहता है वर्तुलाकार, पर सांझ को वहीं पहुँचता है जहां से यात्रा प्रारम्भ की ।

महावीर कर्म के ईंधन को, ध्यान रूपी अग्नि से जलाना चाह रहे हैं। कर्म रूपी ईंधन, इसे समझें । आत्मा वैसे तो पूर्णतया स्वतंत्र है, सब गतिविधियों का संचालन करती है, पर फिर भी बंधी है कर्मों से । वे कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ । खास बात यह नहीं है कि आत्मा शुभ कर्मों से बंधी है या अशुभ से, पाप से बंधी है या पुण्य से । यहाँ चर्चा पाप और पुण्य की नहीं, शुभ और अशुभ की नहीं, बंधन की है। ध्यान के मार्ग में महावीर केवल पाप से ही मुक्ति नहीं दिलाना चाहते, अपितु पुण्यातीत भी बनाना चाहते हैं । बंधन आखिर बंधन है, चाहे लौह-शृंखला का हो या स्वर्ण-शृंखला का,

शक्कर भरी हो चाहे, धूल भरी हो ।
सोने की सांकल हो या लोहा जड़ी हो ।
शुभाशुभ दोनों त्याग शुद्ध बन जाइये ।
अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये ॥

महावीर ने ईंधन, कर्म का कहा, पाप का नहीं कहा । इसे गहराई से समझें । हम जितने धार्मिक कृत्य करते हैं, सब पुण्य के लिये करते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं, स्वर्ग के लिये करते हैं। महावीर पुण्य को भी एक कर्म मानते हैं और स्वर्ग को भी संसार मानते हैं। इसलिये वे कहते हैं, कर्म रूपी ईंधन, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ। जैसे समाधि में प्रवेश करने के लिये, शुभ और अशुभ दोनों विचार त्याज्य हैं, वैसे ही निर्वाण की ज्योति जलाने के लिये, पाप और पुण्य दोनों से मुक्ति आवश्यक है और इस कर्म ईंधन को जलाने के लिये, महावीर ध्यान की अग्नि का प्रयोग कर रहे हैं। ध्यान सधुक्कड़ी मस्ती है। एक ऐसी मस्ती जिससे दूर हो जाते हैं तनाव, तृष्णा, आंकाक्षा और आसक्तियाँ।

अवसर हाथ लगा है, ध्यान में प्रवेश करने के लिये। कल से ही धीरे-धीरे ध्यान से जीना सीखें। जिस वैभव को ढूंढने के लिये बाहर भटक रहे हो, वह वैभव तुम्हारे भीतर है। पहचानो अपने आत्म वैभव को, 'ओ रम्भाती नदियों, बेसुध कहाँ भागी जा रही हो, बंशीरव तुम्हारे भीतर है।' कस्तूरी कुण्डल बसै, तुम्हारे अन्तर में है वंशी की आवाज, कुण्डली में है कस्तूरी और भीतर है अनन्त वैभव। अगर उस आत्म-वैभव को उजागर कर लिया, तो सच कहता हूँ उस वैभव के सामने, सिकन्दर का सिर भी शर्म से झुक जायेगा।

अभी भी समय है, अपनी शक्ति का पुरजोर उपयोग करो। डूबो ध्यान में, उतरो समाधि में। खो जाओ, रम जाओ। शुरू कर दो बजाना अपनी अन्तर वीणा को, ध्यान की अंगुलियों से, अन्यथा वीणा बेकार चली जाएगी। संगीत मात्र वीणा से नहीं, अंगुलियों की कृपा से प्रगट होता है। अगर ऐसा न किया, अपने तारों को न छेड़ा तो वीणा मृत रह जाएगी, संगीत सोया/दबा रह जाएगा। जैसे वृक्ष में बीज दबा रह गया, जैसे आवाज कंठ में अटकी रह गयी, जैसे प्रेम हृदय में बंद रह गया, जैसे कली खिलने को थी, खिल न पायी। कली खिल न पायी, सुगंध बिखर न पायी।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनासक्ति : संसार में संन्यास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"परिवार-नियोजन के आधुनिक उपायों से जनसंख्या-वृद्धि तो रुक जायेगी, पर वासना, कामेच्छा-भोगेच्छा भरपूर फैल जायेगी। मात्र परिवार-नियोजन ही नहीं; देश को सुखी-समृद्ध करने के लिए, इच्छा-नियोजन भी होना आवश्यक है। सदाचार के साये में जीने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी कामना, वासना और तृष्णा पर भी लगाम लगाये।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर ने आसक्ति को ही लोक कहा है। आचारांग के पहले अध्याय में कहा है, 'इच्चत्थं गड्ढिए लोए' आसक्ति ही लोक है। जो आसक्त है, वह संसारी है। जो अनासक्त है, वह परीत संसारी है। आसक्ति का दायरा जितना विस्तृत होगा, संसार और बन्धन उतना ही प्रगाढ़ कहलाएगा।

आसक्ति का अर्थ है- मूर्च्छा। इसे हम सम्मोहन भी कह सकते हैं। मेरा भाई, मेरी पत्नी, मेरी माँ, मेरी दुकान, मेरा घर–'यह मेरा' ही आसक्ति है। परिजनों के बीच रहना-जीना, कपड़े पहनना या भोजन करना आसक्ति की मुहर लगाना नहीं है। वरन् इन सबके साथ 'मेरे' को जोड़ना ही आसक्ति है। अनासक्त वह है, जो संसार में रहकर भी कमल की पंखुडियों की तरह निर्लिप्त जीता है।

जीवन में आसक्ति का दायरा, आयु क्षीण होने के साथ-साथ संकुचित होता हो, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में जीवन का कलश जैसे-जैसे रीता होता है, आसक्ति और गहरी होती जाती है। व्यक्ति संसार में प्रवेश तो आम जीवन जीने के लिए ही करता है, लेकिन धीरे-धीरे ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाता है, जिसमें प्रवेश करने के बाद बाहर निकलना दुष्कर हो जाता है। जाल बनाती है मकड़ी औरों को फंसाने के लिए, लेकिन उन बारीक और चिपचिपे रेशों में वह इतनी उलझ जाती है कि मकड़ी का जाल ही मकड़ी के लिए व्यूह बन जाता है।

मकड़ी के शरीर में एक विशेष ग्रन्थि होती है, जिससे 'एमिनो एसिड' स्रावित होता है। उसीसे मकड़ी धागा बुनती है। जाला इसका शिकार को फंसाने का साधन है। इसके जाले की विशेषता यह होती है कि जीव इसमें से निकलने के लिए जितना छटपटाता है, उतना ही उलझता जाता है। किसी को अपने शिकंजों में जकड़ने के लिए आतुर मकड़ी, किसी और को जकड़ पाये या न जकड़ पाये, उसकी अकड़ तब ढीली पड़ जाती है जब वह स्वयं ही अपने जाल में उलझ जाती है। मकड़ी की इस जाल से मुक्ति नामुमकिन तो नहीं, लेकिन टेढ़ी अवश्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जब जाल बनाया जाता है तब जीवन का एक लम्बा भाग रेशे से रेशे को जोड़ने में बीत जाता है। भूख-प्यास की चिन्ता नहीं, सर्दी-गर्मी की परवाह नहीं, धुन की धनी मकड़ी हँसते-हँसते जाल बनाती है और उस जाल में फँसकर रोते-रोते जिन्दगी पूरी करती है।

मकड़ी जाल बुनती है।
तुम भी जाला बुनते हो!
जाले इसलिए हैं,
कि वे बुने जाते हैं।
मकड़ी के द्वारा
तुम्हारे, मेरे
या हम सब के द्वारा।
मकड़ी, हम सब, इसलिए हैं
कि अपने-अपने जालों में
या एक-दूसरे के बुने
जालों में फँसे हैं।
हम सब जाल बुनते हैं
तब चुप-चुप रहते हैं
लेकिन जब उनमें फँसते हैं
तब बहुत शोर करते हैं।

यहाँ संसार में जिस-जिसने जाल बुना है, अवश्य फंसा है। चना न खाने वाला, न खाकर पछताया है या नहीं पछताया, पर जिसने खाया है वह तो पछता ही रहा है। मनुष्य की आसक्ति का मकड़-जाल मकड़ी से भी बदतर है। मकड़ी केवल एक जाल बुनती, बनाती है लेकिन मनुष्य न जाने कितने मकड़-जाल बुनता-बनाता है। जड़ से जड़ को सजाया जाता है और चेतना प्रफुल्लित होती है। पुद्गल से पुद्गल को सजाने-संवारने में चेतना की आसक्ति/मूर्च्छा, इसी का नाम मिथ्यात्व है। यह आत्मा की वह दशा है जब चैतन्य से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, सारा सम्बन्ध जड़ के साथ, पुद्गल के साथ, भौतिक पदार्थों के साथ ही हो जाता है। इस गिला भरी जिंदगी में व्यक्ति आवश्यकताओं की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ति तो जैसे-तैसे कर लेता है, लेकिन इच्छायें... ! इच्छायें तो इतनी लम्बी होती हैं कि उसका छोर पकड़ना तो दूर व्यक्ति उन्हें देख भी नहीं पाता।

मनुष्य इच्छाओं की पूर्ति के लिए मंसूबे बांधता है, ख्वाब देखता है, सपनों में खोता है, पर अन्त में हाथ मलने के सिवा इस मामले में कुछ नहीं कर पाता। हैसियत होती है झोंपड़ी की और ख्वाब देखता है महलों के। सोये-सोये भले ही सपनों में महल की यात्रा कर आये या रनिवास में रात बिता आये, पर आँख खुलने पर तो झोंपड़ी ही नसीब में रहेगी। अपनी इच्छाओं के पाँव वहीं तक पसारना ठीक है, जहाँ तक गूदड़ी की सीमा है। अन्यथा इच्छायें मात्र सपनों मे पूर्ण हो पाएंगी, जीवन का यर्थाथ कुछ और ही होगा-

नाम में शहीदों के डिग्रियाँ नहीं होती
बदनसीब हाथों में चूड़ियां नहीं होती।
सबको उस रजिस्टर पर हाजरी लगानी है
मौत वाले दफ्तर में छुट्टियां नहीं होती।
ढूंढते हो क्यों ममता खाड़कू की आँखों में
सिगरेटों के पैकिट में बीड़ियां नहीं होती।
जो तलाश में खुद की चल रहे अकेले हैं
यार उन के पावों में जूतियां नहीं होती।
मत करो बुढ़ापे में इश्क की तमन्नाएं
क्योंकि फ्यूज बल्बो में बिजलियां नहीं होती।
इतनी उँची मत छोड़ो गिर पड़ोगे धरती पर
क्योंकि आसमानों में सीढ़ियां नहीं होती।
कर्म के मुताबिक ही फल मिलेगा इंसां को।
आमवाले पेड़ों पर भिंडिया नहीं होती।

यह हमारे जीवन का कटु सत्य है। हमारी इच्छाएं बेलगाम हैं। दौड़ रही हैं वे मृग की तरह, हवाओं में दौड़ लगाकर, पर अन्त में पस्त ही होना पड़ेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहाँ तक फैलायेगें हम अपनी आसक्ति, मूर्च्छा और इच्छा के दायरे को। आसाक्ति न शुभ है, न शान्त है। यह खून की तरह लाल है, मद की तरह नशीली है, बुद्धि की स्थिरता खोती है। यह सही को गलत और गलत को सही दिखाती है।

आसक्ति और सम्मोहन के विविध रूप हैं। व्यक्ति की आसक्ति, मूर्च्छा और सम्मोहन सब कुछ जड़ के साथ होता है। वह दलदल में पैदा होता है और दलदल में ही उलझा रहता है। कितनी कितनी प्रकार की आसक्ति में जीता है इंसान। मकान का राग, पुत्र का राग, पत्नी-परिवार-पैसे का राग, पता नहीं राग के कितने रूप उसे चारों ओर से घेर लेते हैं।

व्यक्ति की आसक्ति को जब-जब भी चोट लगेगी वह दुःखी और व्यथित होगा। दुकान और मकान की थोड़ी-सी क्षति भी आसक्त मन में भयंकर बवाल खड़ा कर देती है। मकान गिरा इसलिए व्यक्ति नहीं रोता है, आंखों में आँसू इसलिए है कि उसके ममत्व को चोट लगी। अगर मकान गिरने से या आग लगने से आंख में आंसू आते तो पड़ौसी के मकान गिरने पर क्यों नहीं आते ? वास्तव में ये आंसू मकान के गिरने पर नहीं, अपनी आसक्ति पर मार पड़ने के कारण आ रहे हैं।

व्यक्ति को निवास के लिए चार कमरों की आवश्यकता होती है, लेकिन चाहत सात मंजिल की रहती है। संयोगवशात् सात मंजिला मकान भी बन जाता है, लेकिन इसी के साथ आसक्ति के मकड़-जाल भी बुन जाते हैं। व्यक्ति की आसक्ति भी इतनी गहरी है कि मकान का एक भाग भी गिर जाये तो व्यक्ति रो पड़ता है, लेकिन मालिक के मरने पर कभी मकान को रोते हुए देखा है ? यहाँ चर्चा न मकान की, न मालिक की, चर्चा आसक्ति की है। जिस मकान के लिए जिन्दगी भर की कमाई राख, पानी की जा रही है, सोचो, जब श्मशान में सोओगे, इतनी भी जगह तुम्हारे पास न होगी कि करवट भी बदल सको। जिस सोने और चाँदी को सजाने-संवारने में जीवन की भव्यता खोई है, ये सोने-चाँदी तब तिजोरी में धरे रह जाएंगे जब मौत तुम्हें अपने आगोश में छिपा ले जाएगी।

शरीर माटी का है, इसे सजाया और संवारा जाता है सोने-चांदी से। इंसान का जीवन छोटा है, पर अरमान...

छोटा-सा तू कितने बड़े अरमान है तेरे ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिट्टी का तू सोने के सब सामान हैं तेरे,
मिट्टी की काया मिट्टी में, जिस दिन समाएगी,
ना सोना काम आएगा, ना चांदी आए
पर खोल ले पंछी तू पिंजरा छोड़कर उड़जा,
माया महल के सारे बन्धन तोड़कर उड़जा,
धड़कन में जिस दिन मौत तेरी गुनगुनाएगी,
ना सोना काम आएगा, ना चाँदी आएगी ॥

यह गीत उस पंछी के नाम है, जो पिंजरे में कैद है और पिंजरे से ही मोह कर बैठा है। यह गीत आह्वान है पंछी को पिंजरा छोड़ने के लिए, बंधन तोड़ने के लिए। धड़कन में मौत गुनगुनाए उससे पहले बेहोशी को तोड़ें, अपने अस्तित्व को आत्मसात् करें। आज महावीर के जिस सूत्र के हम तार छेंड़ेगें, वह इसी बेहोशी और आसक्ति को तोड़ने के लिए है, संसार को जगाने के लिए है। यह संदेश उसके लिए है जो दुःख में जी रहा है, दुःखों को पहचान भी रहा है, लेकिन मुक्त नहीं हो पा रहा है। इसलिए आज का सूत्र बंधन से मुक्ति का सूत्र है। सूत्र है—

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठं पलं नाभिसमेइ तीरा।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुवयामो ॥

जैसे दलदल में फँसा हुआ हाथी जमीन को देखते हुए भी किनारे पर नहीं पहुंच पाता, वैसे ही काम-गुणों में आसक्त, श्रमण-धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नहीं कर पाते।

महावीर का यह सूत्र जागृति का सन्देश है। यह उनके अनुभव की वाणी है। इस सूत्र से माया टूटेगी, स्वप्न टूटेगा, बेहोशी टूटेगी। 'जैसे दल-दल में फंसा हुआ हाथी जमीन को देखकर भी किनारे नहीं पहुंच पाता।' महावीर ने जीवन की सच्चाई को उजागर करने के लिए सुन्दर उपमा दी है– दल-दल, हाथी और जमीन। महावीर ने देखा होगा कहीं दल-दल में फंसे हाथी को। यह एक पारम्परिक किन्तु व्यावहारिक उदाहरण है दल-दल और हाथी का। कीचड़ में कमल खिलते हैं हाथी उनके सौन्दर्य के प्रति आकर्षित भी होता है, पर कीचड़ में धंसने के बाद चाहे कमल हो या हाथी मुक्ति का मार्ग हाथ लगना कठिन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दल-दल में हाथी और बेहोशी में मनुष्य, हाथी कीचड़ में है और मनुष्य संसार में है। लेकिन तट को देखते हुए भी निकलना दोनों के लिए दुष्कर-सा हो गया है। जन्म से मृत्यु तक संसार का ऐसा गुरुत्वाकर्षण चलता है कि व्यक्ति देख तो रहा है समाधि की राहों को, लेकिन संसार का गुरुत्वाकर्षण उसे अपनी ओर खींच लेता है।

महावीर इसी आसक्ति से छुटकारा दिलाना चाह रहे हैं। उनके अनुसार जीवन की ध्रुवता चैतन्य में है, लेकिन व्यक्ति अध्रुव और अशाश्वत संसार में ही अपने को रचा-पचा लेता है। शरीर माटी का, मकान माटी का, सोना-सम्पत्ति सब कुछ माटी के हैं, पर आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि चेतना भी माटी में रच-बस जाती है, उसका मेरापन माटी के साथ ही जुड़ जाता है। यों एक अनश्वर नश्वर में विलीन हो जाता है।

दुनिया के जितने भी दुःख हैं, अस्तित्व से एक भी दुःख व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है। सारे दुःख ममत्व बुद्धि से पैदा होते हैं। दुःख हमेशा उसी द्वार से आता है जिससे सुख आता है। व्यक्ति की आसक्ति का खूंटा इतना गहरा गड़ जाता है कि उसका 'मैं' का संबंध भी जड़ के साथ जुड़ जाता है। काश ! व्यक्ति 'मैं' में भी आत्मा को निहार पाता और 'मेरे' में भी।

मकान व्यक्ति से कभी नहीं कहता कि तुम मेरे मालिक हो। व्यक्ति स्वयं गौरव के साथ कहता है, 'मैं मकान-मालिक हूँ।' क्या कभी किसी कल कारखाने ने कहा कि मेरा मालिक कौन है ? व्यक्ति सदैव अपनी मालकियत का बोर्ड लगाता है और सांसारिकता में स्वयं घिर जाता है। जिस मकान को बनाने, सजाने, संवारने में व्यक्ति अपनी सारी जिन्दगी पूरी कर देता है, वही मकान उसके लिए तब सरायखाना बन जाता है जब उसे संसार से अलविदाई मिल जाती है।

कहते हैं सम्राट् इब्राहीम के महल में एक फकीर पहुंचा। द्वारपाल से कहा– 'मैं आज महल में विश्राम करना चाहता हूँ।'

द्वारपाल ने कहा– 'फकीर ! यह राजा का महल है, सरायखाना नहीं।'

फकीर सम्राट् से मिला, पर सम्राट् ने भी फकीर से यही कहा-'यह महल है, मेरा निवास-स्थान है, सरायखाना नहीं है। अगर चाहो तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हारे रात रुकने की व्यवस्था हो सकती है, नगर की किसी धर्मशाला में।'

फकीर के कहा–'राजन् ! जिसे तुम अपना महल मानते हो यह महल नहीं सरायखाना है, धर्मशाला है। मैं जब साठ वर्ष पूर्व यहाँ आया था, तब तुम्हारे परदादा यहाँ रह रहे थे, वे अब कहाँ गये ?'

सम्राट् ने कहा, 'वे नहीं रहे।'

'तुम्हारे दादा ?'

'वे भी चले गये।'

'तुम्हारे पिता ?'

'वे भी चले गये।'

फकीर ने हँसते हुए कहा, 'सम्राट् ! इसी तरह तुम भी चले जाओगे, कभी तुम्हारा पुत्र भी चला जाएगा। कोइ आज जा रहा है, कोई कल जाने वाला, दुनिया है धर्मशाला। जब तुम्हारे परदादा, दादा, पिता सब जिसे छोड़कर चले गये, क्या तुम वहाँ शाश्वत रह पाओगे। सम्राट् ! बोलो मैं इसे सरायखाना न कहूँ, तो और क्या कहूँ !'

महल तब तक महल है, जब तक हमारा उसके साथ संबंध है। उस दिन ये महल, मकान, बंगला सब धर्मशाला का रूप धारण कर लेगें, जिस दिन हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

संसार का अस्तित्व हमारे लिए तभी तक है, जब तक हमारा अस्तित्व है। दुकान, मकान सब यहीं धरे रह जाते हैं। पत्नी चौखट तक पहुँचा पाती है और परिजन श्मशान घाट तक साथ निभाते हैं, जब हँसा उड़ जाता है। इसलिए कीमत संसार की मत आंकना, आत्मा की आंकना, जड़ से ऊपर उठकर चेतना की आंकना। सांसारिक सुखों की आसक्ति कभी भी सत्य तक नहीं पहुँचा सकती।

आसक्ति के भी कई दायरे हैं। व्यक्ति का मन मात्र मकान, दुकान, पुत्र-परिवार या धन-सम्पत्ति के प्रति ही आसक्त नहीं होता, अपितु देव,गुरु और धर्म का भी सम्मोहन उसे घेर लेता है। मन्दिर और मस्जिद से भी राग और द्वेष के सम्बन्ध जुड़ जाते हैं। धार्मिकता मुँह के बल गिर जाती है और साम्प्रदायिकता सिरमौर हो जाती है। अपने गुरु को सुगुरु, अपने धर्म को सुधर्म, अपने देव को सुदेव और प्रत्येक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर के साथ 'कु' का प्रयोग करना साम्प्रादायिक व्यामोह नहीं तो और क्या है ? अभी अयोध्या में मन्दिर और मस्जिद को लेकर जो कुछ हुआ उसने देश भर में इंसानियत का जनाजा निकाल दिया। हिन्दू ने मुसलमान को और मुसलमान ने हिन्दू को मारा, इन दोनों की मारकाट से इस देश की मानवता पर मातम छा गया।

मन्दिर का शिखर गिरने पर मौलाना खुश होता है और मस्जिद की मीनारें ढहने पर पंडित। साम्प्रदायिक आसक्ति का परिणाम यह होता है, कि व्यक्ति सृजन का मार्ग छोड़कर विध्वंस का मार्ग अपना लेता है। जो अपना हित नहीं कर सकता, वह दूसरों का अहित कर खुश होता है। मन्दिर बनाने का सामर्थ्य नहीं है तो मस्जिद तोड़कर ही पुण्य कमाना चाहता है। चाहे मन्दिर हो या मस्जिद, किसी को मिटाकर नव निर्माण करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। साम्प्रदायिक व्यामोह को गिराना ही आध्यात्मिकता है, धार्मिकता है, नैतिकता है।

महावीर ने कहा, 'दल-दल में फंसा हाथी।' सीधा-सा अर्थ हुआ आसक्ति में फंसा हुआ मनुष्य। यहाँ हर मनुष्य शोक-ग्रस्त है, यह बात अलग है कि शोक के कारण अलग-अलग हों, लेकिन शोक हर किसी का पिछलग्गू है। कोई इसलिए शोक कर रहा है कि उसे पिछले वर्ष पन्द्रह लाख की आय हुई थी, इस वर्ष तो पांच की हुई है। जो पांच पाया उसका हर्ष नहीं है लेकिन जो दस हाथ न लगा उसका शोक है।

कभी भिखारियों की जमात देखी है ? सिर्फ आपकी, अपने मकान और बंगले के प्रति आसक्ति होती हो ऐसी बात नहीं है। भिखारी ने भी उस स्थान पर कब्जा कर रखा है, जहाँ बैठकर वह रोज भीख मांगता है। वह उस स्थान पर कब्जे के लिए झगड़ा भी कर लेगा। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता में तो भिखारी, अपनी भीख मांगने की जगह एक-दूजे को किराये पर देते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व मैंने सुना, कि बम्बई के एक भिखारी ने अपने दामाद को दहेज में वह स्थान दिया, जहाँ वैठकर वह वर्षों से भीख मांगता था। बड़े शहरों में देखा होगा, भिखारी भी जिस जगह पर बैठता है, सड़क के किनारे, वह उसकी हो जाती है। अगर कोई दूसरा वहाँ बैठ जाये तो झगड़ा शुरु हो जाता है। वैसे फुटपाथ किसी की बपौती नहीं हो सकता। मगर इन भिखारीयों के अपने अड्डे हैं। जो भिखारी जहाँ बैठकर कमाता है, वह उसकी दुकान हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक भिखारी ऐसी ही किसी दुकान में बैठा भीख माँग रहा था। एक व्यक्ति उधर से गुजरा और भिखारी कातर स्वर में बोला, 'भैया! कुछ पैसे दे दो, सिनेमा देख आऊंगा। वहीं उसके पास-तख्ती लगी थी कि 'मैं अंधा हूँ।'

उस व्यक्ति ने भिखारी से कहा, 'तुम अंधे हो फिर सिनेमा कैसे देखोगे ? '

भिखारी ने कहा, 'नहीं जनाब ! मैं अंधा नहीं हूँ। असल में यह दुकान दूसरे भिखारी की है, वह आज छुट्टी पर है। मैं तो लंगड़ा हूं, पर दुकान मौके की है। जब वह छुट्टी पर होता है तो मुझे बिठा देता है।'

भिखारियों की इन बातों से हमें हँसी आ रही है। पर हमारी हालत तो और भी अधिक हास्यास्पद है। भिखारी का किसी स्थान के प्रति ममत्व का, अधिकार का भाव तो वर्षो में पनपा है, लेकिन हम हमारे अधिकार भाव को देखें। दिल्ली से आगरा के लिए 'ताज' में बैठते हैं, मात्र तीन घंटे की सफर, लेकिन हमारे द्वारा आरक्षित सीट पर अगर कोई दूसरा वृद्ध भी बैठ जाता है तो हम उससे तत्काल कह देते हैं, 'भाई साहब ! उठिये।' वह कहता है, 'क्यों ?' हम कह देते हैं, 'यह सीट मेरी है।'

मात्र तीन घंटे के लिए आरक्षित सीट के प्रति भी हमारा कितना जबरदस्त अधिकार भाव ! लोग इस सीट के लिए 'तू-तू, मैं-मैं' पर उतारू हो जाते हैं। इस रागात्मक वृत्ति को ही महावीर मूर्च्छा कहते हैं, शंकर माया कहते हैं और पतंजलि बेहोशी कहते हैं।

संसार में रहना हमारा धर्म है, क्योंकि संसार में ही हमारा पुष्प पल्लवित हुआ है, खिला है। जो भोग में जी रहा है, वह भी संसार में है और जो योग में जी रहा है वह भी। लेकिन योगी नाम भर को संसार में हैं और भोगी न केवल स्वयं संसार में है, अपितु अपने भीतर भी संसार को बसाये है।

संसार और संन्यास का भेद कीड़े और कमल से समझे। कीचड़ में कमल भी पैदा होता है और कीड़ा भी। लेकिन एक, जैसे-जैसे अपने अस्तित्व को आत्मसात् करता है, वैसे-वैसे कीचड़ में धँसता जाता है वहीं दूसरा, इसके विपरित अपने अस्तित्व को आत्मसात् करते ही कीचड़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उपरत हो जाता है। कीड़ा कीचड़ में धंसता है और कमल कीचड़ से बाहर आ जाता है। कमल का जीवन श्रमण का जीवन है, एक संन्यासी-साधक का जीवन है।

महावीर आज के सूत्र में कीचड़ से बाहर निकलने के संकेत दे रहे हैं। वे मनुष्य को दलदल से बाहर निकालना चाहते हैं और अस्तित्व की पहचान कराना चाहते हैं। इसलिए महावीर के सूत्र-सन्देश जीवन, जगत् और अध्यात्म तीनों से जुड़े हैं। महावीर जगत् की पहचान करवाकर, जीवन को अंधे-अभिशप्त गलियारों से बाहर निकालना चाहते हैं। वे मनुष्य को अध्यात्म के उस सन्देश का मालिक बनाना चाहते हैं, जिसका मार्ग न केवल निष्कंटक है, अपितु प्रशस्त है।

महावीर केवल आँखे मूंदकर बैठने की प्रेरणा नहीं दे रहे हैं। वे साक्षात्कार करा हैं रहे मनुष्य को उस तत्त्व से जो अदृश्य है, अस्पृश्य है। आत्मा को भला कभी देखा-दिखाया जा सकता है, जलाया-मिटाया जा सकता है। न इस तत्त्व की व्याख्या की जा सकती है, न उपदेश दिये जा सकते हैं। दर्शन का भला कैसा प्रदर्शन ! आत्मा का मात्र अनुभव किया जा सकता है, जीया जा सकता है।

महावीर की भाषा बोध की भाषा है। वे जीवन को कीचड़ से उपरत करना चाहते हैं। अभिशप्त जिंदगी को वरदान रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं। वे व्यक्ति को ऐसे किसी दल में नहीं रखना चाहते जो दल-दल में ले जाये।

न पक्ष, न विपक्ष, महावीर निष्पक्ष की बातें बता रहे हैं। वे दुनिया के सामने एक चिकित्सक बनकर पेश आ रहे हैं, ताकि रोगी को रोग का बोध कराया जा सके। महावीर उस रोग का बोध कराना चाहते हैं जिसके कारण व्यक्ति पीड़ित है, व्यथित है, व्याकुल है।

ज्ञानियों की यह खासियत होती है; वे रोगी को सीधे दवा नहीं देते हैं, पहले रोग की पहचान, फिर निदान। महावीर पहले रोग का बोध कराते हैं, फिर दवा देते हैं, पहले प्यास जगातें हैं, फिर पानी पिलाते हैं।

महावीर 'मैं' का बोध भी कराना चाहते हैं और 'मैं' से छुटकारा भी दिलाना चाहते हैं। 'मैं' जो अहंकार के अर्थ में प्रयुक्त है, उसके गिरते ही, वह 'मैं' प्रकट हो जाता है जिसे हम आत्मा कहते हैं। अहम्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के बोध के अभाव में अर्हम् की उपलब्धि कैसी ? महावीर सर्वप्रथम अहंकार के 'मैं' को गिराना चाहते हैं, फिर मेरेपन को, ममत्व के भाव को। मैं और मेरा, यही मिथ्यात्व है, माया है, सम्मोहन है। आसक्ति इसी का अपर नाम है।

महावीर की भाषा तो कैवल्य की भाषा है। एक की भाषा, अपने आपसे जुड़ने की भाषा है 'अहमिक्को खलु सुद्धो' मैं अकेला हूँ, शुद्ध हूँ। भीड़ में भी निःसंग करा रहे हैं महावीर।

'सब ठौर हमरी जमात, सब ठौर पर मेला।
हम सब मांही, सब हम मांही, हमहीं बहुरि अकेला।'

कबीर का यह पद, महावीर के सूत्र का ही विस्तार है। महावीर का यह सूत्र सांसारिक मायाजाल से मुक्त होने का मंत्र है। हमें सर्वप्रथम यह ज्ञात होना आवश्यक है कि 'मैं कौन हूँ।' मेरी जिंदगी में दूसरे की किस हद तक जरूरत है। व्यक्ति को यह भी ज्ञात नहीं है कि मैं कौन हूँ, दुनिया में मेरा कौन है और वह दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करने को लालायित है। दुनियाँ में ममता बांटना हमारा धर्म है, लेकिन ममत्व बुद्धि, जिसे हम मोह कह सकते हैं इसका संकुचन आवश्यक है। वात्सल्य और ममता, प्रेम का विस्तार है वहीं राग और आसक्ति प्रेम को बेड़ियों में जकड़ना है। महावीर सर्वप्रथम आत्म-परिचय प्राप्त करने को प्रेरित कर रहे हैं। जो ऐसा कर लेता है वह पूर्ण हो जाता है। बिना शून्य का बोध प्राप्त किये विराटता को पहचाना नहीं जा सकता। 'जे एगं जाणई से सव्वं जाणई' जो एक को, अपने आपको जानता है वह सब को, सारे संसार को जान लेता है। बूंद में भी सागर छलक सकता है।

आज के सूत्र को गहराई से समझें। 'जैसे दल-दल में फंसा हाथी तट को देखते हुए भी किनारे नहीं पहुँच पाता', यह सूत्र संसार और उसकी आसक्ति से आँख दो-चार करवा रहा है। जैसे मकड़ी के जाल में अनगिनत रेशे होते हैं वैसे ही आसक्ति के रेशे हैं। महावीर जीवन की उस अन्तिम घड़ी तक व्यक्ति को सचेत रहने का संकेत दे रहे हैं, जहाँ आसक्ति का एक रेशा भी जुड़ा हो।

महावीर श्रमण-धर्म की ओर जीवन की धारा मोड़ रहे हैं। जीवन में जानना ही पर्याप्त नहीं है, ज्ञान का आचरण भी अनिवार्य है। हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के सिद्धान्तों को जानते हैं, लेकिन जानते हुए भी अपना नहीं पाते। दुर्योधन बहुधा कहा करता था, 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।' मैं धर्म को जानता हूँ लेकिन मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। मैं अधर्म को भी जानता हूँ लेकिन उससे भी निवृत्ति मेरे हाथ की बात नहीं है। यह उस व्यक्ति की अन्तर्व्यथा है जो मुक्त गगन को देखकर भी पिंजरे में फंसा है। ऐसा नहीं है कि व्यक्ति पाप और पुण्य से अनभिज्ञ हो। शक्कर और धूल दोनों का भेद व्यक्ति जानता है, धर्म-अधर्म दोनों को देखता है, लेकिन सांसारिक रसों में आसक्ति उसे श्रेय की ओर दो कदम भी नहीं बढ़ाने देती। गोरख कहा करते थे, 'पहले आरंभ छांडो, काम, क्रोध, अहंकार।' अगर आरंभ करनी है अध्यात्म की यात्रा, तो छोड़ना होगा सबसे पहले काम, क्रोध, और अहंकार को। काम का अर्थ होता है– चाह, इच्छा। चाह सदा दूसरे की होती है, दूसरे से होती है। वहाँ काम और अधिक मजबूत हो जाता है, जहाँ दूसरे के बिना हमारा काम नहीं चलता। विपरीत की चाहना हमारा स्वभाव है। इसी का परिणाम है कि पुरुष स्त्रियों के पीछे दौड़ता है और स्त्रियाँ पुरुषों के पीछे।

गोरख क्रोध, काम और अहंकार को एक ही मंच पर खड़ा कर रहे हैं। तीनों एक दूजे से जुड़े हैं। क्रोध और अहंकार का तो चोली-दामन का रिश्ता है। ये दोनों ही व्यक्तित्व-विकास के मार्ग में कांटें बिखेरते हैं। लड़ाई-झगड़ा करना कोई रोग नहीं है बल्कि व्यक्ति क्रोध और अहंकार के कारण ही ऐसा करता है। जीवन में ऊंचाईयों को छूने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति क्रोध और अहंकार का पूर्ण त्याग कर दे। इससे व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

क्रोध, व्यक्ति को मानसिक रोगी बनाता है। क्रोध का सीधा प्रभाव स्नायविक संस्थान पर होता है और स्नायु मंडल पर पुनः पुनः झटका लगने से व्यक्ति मानसिक रूप से रुग्ण हो जाता है। परिणाम स्वरूप क्रोधी व्यक्ति की स्मृति कमजोर हो जाती है, बात-बात में झुंझलाहट होती है, और तो और इसका परिणाम पागलपन में भी परिवर्तित हो सकता है। जब क्रोध अपने पूर्ण वेग में होता है तो मनुष्य का रक्त भी जहरीला हो जाता है। वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार, ऐसी दशा में एक पाउंड खून जलकर समाप्त हो सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोरख कहते हैं 'छांडो काम', जिसने काम छोड़ दिया उसने सब कुछ छोड़ दिया। और कुछ छोड़ने को शेष रहा ही नहीं। काम छूटा यानि दूसरे की जरूरत छूटी। कामविजेता से क्रोध अपने आप छूट जाता है। काम भी मन का एक संवेग है और क्रोध भी। जैसे ही संवेग समाप्त होंगे, ये सब पीछे छूट जाएंगे। जहाँ काम नहीं वहाँ क्रोध नहीं। अगर किसी साधु को भी क्रोध में लाल-पीला देख लो, तो निष्कर्ष निकाल लेना कि जरूर इसके मन में कामनाएं दबी हुई हैं। जब-जब कामना-पूर्ति में रुकावट आती है, क्रोध आता है। जिसकी कामनाएं समाप्त हो गयीं उसे क्रोधित करना चाहेंगे, तब भी वह क्रोधित न हो पाएगा। उसके जीवन में चाहे जितनी बाधाएं डालें, उसे बाधा दिखायी भी न देगी।

इसलिए दुनिया में देखा, प्रेमी एक-दूजे से प्रेम भी करते हैं और झगड़े भी। बिना विवाह के आज तक किसी के साथ तलाक जैसे किस्से हुए हैं ? खींचतान वहीं होती है जहाँ प्रेम होता है। आखिर ऐसी फजीहत क्यों होती है ? मनोवैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में खोज की है। उनकी खोज का सार है कि जैसे ही हम किसी के प्रेम में पड़ते हैं, एक बात समझ में आनी शुरु हो जाती है कि हमारा सुख दूसरे पर निर्भर है। यह निर्भरता ही कष्ट देती है, कि दूसरे के हाथ हमारे सुख की चाबी चली गई। जब-जब अपेक्षा उपेक्षा का रूप धारण कर लेती है, तब-तब क्रोध पैदा होता है। जिससे हमारा सम्बन्ध है पता नहीं वह कब सुख देगा। सुख वह जब देगा तब देगा, पर मालकियत खो गयी, गुलामी हावी गयी। गुलामी से विद्रोह की भावना भड़कती है, विद्रोह से क्रोध-वैमनस्य होता है, उससे फिर संघर्ष की शुरुआत होती है।

काम-क्रोध दोनों साथ-साथ चलते हैं। इन दोनों के बीच अहंकार खड़ा होता है। जिसकी न कोई कामना,न कोई क्रोध है उसका अहंकार अपने आप विलीन हो जाता है। अहंकार के पंछी को उड़ान भरने में, काम और क्रोध इन दो पंखों से ही सहायता मिलती है।

हमें इन दोनों पंखों को गिराना हैं, जिनसे अब तक इस पंछी ने मात्र संसार की ही यात्रा की है। यह प्रश्न बेबुनियादी है कि बाहर की यात्रा से कुछ हासिल होता है या नहीं ? हर इंसान इसका अनुभवी है कि बाहर की यात्रा से सिवा निराशा, कुंठा और वितृष्णा के कुछ नहीं मिलता है। जितनी कामना करोगे, माँगोगे, उतने ही परेशानी को पास पाओगे। यहाँ सब कुछ उलटा हाथ लगेगा। खोजोगे सुख, हाथ लगेगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुःख । तमन्ना करोगे बहारों की, मिलेंगे जख्म–

मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी,
मुझको रातों की सियाही के सिवा कुछ न मिला ।
मैं वह नग्मा हूँ, जिसे प्यारकी महफिल न मिली ।
वह मुसाफिर हूँ, जिसे कोई मंजिल न मिली ।
जख्म पाए हैं, बहारों की तमन्ना की थी,
मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी ॥
दिल में नाकाम उम्मीदों के बसेरे पाए ।
रोशनी लेने को निकला तो अंधेरे पाए ।
रंग और नूर धागों की तमन्ना की थी,
मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी ॥

यहाँ किसी को कुछ नहीं मिला है । तमन्नाएँ चाँद-सितारों की हैं, पर रात की सियाही हाथ लगी है । माँगने के लिए व्यक्ति स्वतन्त्र है, लेकिन मिलने वाला कुछ नहीं है । महावीर कल्पनाओं के जाल से व्यक्ति को बाहर निकालकर, याचना की प्रवृत्ति से छुटकारा दिलाना चाहते हैं । वे दल-दल से निकालकर हर-एक को स्वतंत्र करना चाह रहे हैं ।

महावीर ने काम-भोग नहीं कहा, काम-गुण कहा, क्योंकि आसक्ति के अनेक मार्ग होते हैं । स्त्री-राग और पुरुष-राग तो होता ही है, इसके अतिरिक्त ऐसे कई राग होते हैं जिनका सम्बन्ध स्त्री और पुरुष के साथ नहीं अपितु अपनी इन्द्रियों या अन्य सम्बन्धों के साथ होता हैं । जितना हानिकर पुरुष राग/स्त्री राग है, उतना ही, या यूँ कहूँ उससे ज्यादा इन्द्रिय राग हानिकर है । इन्द्रियों में आसक्त व्यक्ति स्वयं को विपत्तियों में धकेल देता है ।

मैं बंगाल की यात्रा पर था । वहाँ देखा करता तालाब के किनारे मछुआरे एक लकड़ी के किनारे धागा लटकाये रखते और धागे के किनारे एक कील । वे कील के चारों और आटा चिपका देते । फिर उसे तालाब में डालते, बाहर निकालते तो मछली का मुंह कील में फंसा होता था। मछली इसलिए फंसी कांटे में क्योंकि जिह्वा-राग और आटे की आसक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ने, उसे मोह लिया।

ऐसा नहीं है कि मछली को कांटा दिखाई नहीं दे रहा था। लेकिन कभी-कभी प्राणी जान-बूझकर भी फंस जाता है। हमारी प्रवृत्तियाँ भी तो ऐसी ही हैं। मछली आटे के कारण कांटे में फंसती है, हाथी कमल के लिए कीचड़ में धंसता है, पतंगा रोशनी से मोहित हो दीप में जलता है और मनुष्य कामेच्छा के कारण संसार में डुबकियाँ लगाता है।

काम-पूर्ति से कामेच्छा शांत हो जाती हो, ऐसा नहीं है। जैसे-जैसे कामनाओं की पूर्ति की जाती है वैसे-वैसे कामनाएं बढ़ती जाती हैं। खुजलाहट के समय तो मन को अच्छा लगता है, लेकिन तब सिवा पछतावे के कुछ हाथ नहीं लगता जब मवाद और खून रिसना शुरु हो जाता है। जैसे खुजली को खुजलाने से खुजलाहट और बढ़ती है वैसे ही काम-भोग की पूर्ति से उत्तेजना और अभिवर्द्धित होती है। काम-भोग से तृप्ति जीवन में तब तक हासिल नहीं हो पाती जब तक आंखों की ज्योति नहीं चली जाती है, कमर नहीं झुक जाती। एक बीस-पच्चीस वर्ष का युवक अगर विवाह की तमन्ना रखे तो बात फबती है लेकिन दुनियाँ में उम्रदराज वृद्ध भी विवाह कर रहें हैं। पहले की तीन चली गई तो चौथा विवाह कर रहे हैं। पचास-साठ बसन्त बीत गये हैं, पर तृप्ति तो नजर भी नहीं आती।

मैं इरोड में था। होली के अगले दिन किसी महानुभाव ने अपने घर विशेष प्रवचन का आयोजन किया। प्रवचन के बाद एक मुनिजी ने उस महानुभाव से कहा, जो करीब पचास वर्ष के थे कि महीने में दस दिन तक ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा ले लो। पत्नी भी पास खड़ी थी उसने हामी भर ली। लेकिन वे पचास वर्षीय महानुभाव पत्नी की ओर इशारा कर बोले, 'महाराज जी ! ब्रह्मचर्य की कसम इसी को दिला दो, मैं नहीं लेना चाहता।'

लोग बचना चाहते हैं, यह सोचकर कि यहाँ नहीं तो कहीं और तृप्ति पा लेंगें। लेकिन वहाँ भी तृप्ति कहाँ सम्भव है ? क्षणिक आनंद की अनुभूति हो सकती है, पर यह सब कुछ मानने भर को होता है। कामेच्छा की तृप्ति में आनंद की अनुभूति ठीक वैसे ही होती है जैसे कुत्ते को हड्डी चूसने में। हड्डी चबाने वाला कुत्ता सोचता है खून हड्डी में से आ रहा है। हकीकत में खून हड्डी में से नहीं, उसकी जीभ से आ रहा है और कुत्ता सोचता है हड्डी में आनंद आ रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस संसार में और सांसारिक भोगों में कहीं सार नहीं है। जितना भोगेगे तृष्णा उतनी ही बलवती होगी। घी डालकर आग बुझाना बेवकूफी नहीं तो और क्या है ? इन सबमें न आनंद है, न तृप्ति, मात्र सम्मोहन है। आज अफसोस होता है, कल फिर उत्तेजना होगी। कल फिर अफसोस होगा, परसों फिर उत्तेजना जगेगी। यह अफसोस और उत्तेजना तो बारी-बारी चलती रहेगी। चाहे जितने गहरे उतर जाना संसार में, अन्त में व्यर्थता ही हाथ लगेगी।

भोग में आनंद की खोज प्याज के छिलके उतारकर प्याज का अस्तित्व ढूंढ़ना है। प्याज को ढूंढने के लिए एक-एक छिलके उतारते रहोगे, अन्त में सिवा खोखलेपन के क्या हाथ लगेगा ? प्याज का अस्तित्व छिलकों के सहारे है और भोग का अस्तित्व सम्मोहन के सहारे। जैसे-जैसे सम्मोहन टूटता जायेगा वैसे-वैसे उसके प्रति होने वाली आसक्ति भी कम होती जाएगी।

महावीर कहते हैं काम-गुणों में आसक्ति। महावीर अनासक्त बनाने के लिए आसक्ति से भी नजर मुहैय्या करा रहे हैं। सत् को समझने के लिए आवश्यक है पहले, असत् को समझा जाये। महावीर पहले पहचान कराते हैं फिर छुटकारा दिलाते हैं। अगर आसक्ति छूटी तो सैक्स के प्रति अपने आप उदासीन वृत्ति पैदा हो जाएगी।

काम-भोगों की आसक्ति से छुटकारा परिवार-नियोजन की पारम्परिक शैली है। महावीर इसे पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य भी मानते हैं। इसलिए महावीर ने अणुव्रत में ब्रह्मचर्य को स्वतंत्र रूप से स्वीकार किया। महावीर से पूर्व तीर्थंकर पार्श्व ने ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह के अन्तर्गत ही स्वीकार कर लिया था, लेकिन महावीर ने इस व्रत को समाज एवं देश में व्यापक रूप में फैलाने के लिए, इसे अधिक महिमा मंडित किया ताकि न केवल आसक्ति के तार ढीले पड़ें, अपितु जनसंख्या वृद्धि पर भी रोकथाम हो सके। महावीर ने सब व्रतों में ब्रह्मचर्य को दुष्कर और श्रेयस्कर स्वीकार किया।

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्खरक्खस्स किन्नरा।
बम्भयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं।

उस ब्रह्मचारी को देव-दानव-गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर– ये सभी प्रणाम करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य के तेज के सामने सभी को निस्तेज कर दिया महावीर ने। ब्रह्मचारी के चरणों में सभी का मत्था टिकवा दिया। ये जितने भी देव, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व और यक्ष हैं ये सब विधाता के साम्ने भी अडिग रहेंगे लेकिन तब मात खा जाते हैं जब 'मार' का प्रभाव उन पर आता है। जब कामदेव हावी होता है सब समर्पित हो जाते हैं। यहाँ तो विश्व-विजेता भी हार जाएगा। व्यक्ति दुनिया का शासक हो सकता है लेकिन अपनी बीबी का ? कहते हैं हिटलर जिसके नाम से दुनिया काँपती थी वह भी अपनी बीबी के सामने तो खुद ही थरथर्राता था।

महावीर काम-मुक्ति का सन्देश दे रहे हैं, ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ावा रहे हैं। वे ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्म-शक्ति तो बढ़ाना चाहते ही हैं देश की शक्ति को भी और अधिक पुष्ट करना चाहते हैं। परिवार-नियोजन के आधुनिक उपायों से जनसंख्या-वृद्धि तो रुक जायेगी, पर वासना, कामेच्छा-भोगेच्छा भरपूर फैल जायेगी। मात्र परिवार-नियोजन ही नहीं; देश को सुखी-समद्ध करने के लिए, इच्छा-नियोजन भी होना आवश्यक है। सदाचार के साये में जीने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी कामना, वासना और तृष्णा पर भी लगाम लगाये। शंकर, अरविन्द, विवेकानन्द और विनोबा ये सब वे ब्रह्मचारी हुए हैं, जिन पर इस देश को नाज है।

आज विश्व में 'एड्स' का रोग हर कोने में अपने पाँव पसार रहा है। ऐसे समय में अगर महावीर के ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त, को सम्पूर्ण विश्व में आधुनिक रीति से पेश किया जाये, तो महाविनाशकारी एड्स को भी धरती से अपने पाँव सिकुड़ने पड़ेंगे। यह प्रश्न बेबुनियादी है कि अगर सारी दुनिया ही सैक्स से विमुख हो जायेगी तो क्या संसार का अस्तित्व प्रभावित नहीं होगा ? न ऐसा हुआ है न हो सकता है। ब्रह्मचर्य को सामान्य व्रत न समझें। इस धरती पर एड्स जैसे रोग न फैले इसी उद्देश्य से महावीर ने दुनिया को एक व्रत दिया, 'स्वपत्नी सन्तोष व्रत।' अपनी एक पत्नी के साथ सहवास। आज के चिकित्सक कहते हैं, अगर ऐसा हो जाये तो 'एड्स' पृथ्वी पर फैल न पायेगा।

एड्स का जन्म ही मनुष्य की भोगेच्छा की विपुलता के कारण हुआ है। हालांकि एड्स रोग के पैदा होने के कारण तो कई हो सकते हैं किन्तु इस रोग के फैलाव का मुख्य कारण अनेकों के साथ सम्पर्क और सहवास रहा है। एड्स तभी पनपता है जब भिन्न-भिन्न शरीरों के कीटाणु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक सम्पर्क के कारण एक दूसरे में स्थानान्तरित होते हैं। यदि आने वाली पीढ़ी में हम बिना किसी झिझक के यह संस्कार दें, कि व्यक्ति को अपने जीवन में एक ही जीवन-साथी चुनना चाहिये। जीवन के नैतिक मूल्य मानसिक एवं स्वास्थ्य परक दृष्टि से भी यह बात स्वीकार्य है, और जीवन में दृढ़ता के साथ अमल में लाने जैसी है।

श्रमण-धर्म में प्रवेश करने से पूर्व, महावीर काममुक्ति को अनिवार्य मान रहे हैं। स्त्री और पुरुष दोनों के विपरीतधर्मी हारमोन्स होते हैं, जो एक-दूजे को अपनी ओर खींचते रहते हैं। सड़क पर चलते हुए मंजनुओं को देखा ? वे अपने दोस्त की ओर नजर तक नहीं डालेंगे-, किन्तु उसकी ओर ताक-झांक करेंगे जिससे कोई जान-पहचान भी नहीं है। ये हारमोन्स प्रभावित कर रहे हैं।

दुनिया में जितने बलात्कार होते हैं, वेश्याओं के कोठे चलते हैं या कॉलगर्ल्स के नाम पर जितनी युवतियाँ बर्बाद होती हैं, सब मनुष्य की कामान्धता का परिणाम है। यह सच है कि उल्लू को दिन में नहीं दिखता और कौए को रात में, पर यह भी सत्य है कि कामान्ध न दिन में देख पाता है न रात में। उसके लिए किसी के जीवन का अस्तित्व तक गौण हो जाता है, अपनी कामेच्छा की पूर्ति के सामने। पता नहीं इस संसार में लिनेवेल्ड जैसे कितने कामान्ध लोग हुए हैं, जिन्होंने अपनी जिंदगी में हवस पूर्ति के लिए सैकड़ों-सैकड़ों महिलाओं के साथ बलात्कार कर, उनकी हत्या कर दी।

मैंने सुना है, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को रिझाने के लिए कह रहा था, कहो तो मैं आसमान से सितारे तोड़कर तुम्हारी माँग में सजा दूँ, और तो और तुम्हारे लिए मैं जिंदगी की सभी खुशियाँ तुम्हारे कदमों में न्यौछावर कर सकता हूँ, पर तुम मुझसे विवाह कर लो।

प्रेमिका जो इस तरह के वादे सुनने की आदि थी, वह समझ गयी यह प्यार से पहले इकरार है। उसने गम्भीर होते हुए कहा, 'मुझे न चाँद-सितारे चाहिये और न ही तुम्हारी खुशियाँ। अगर तुम सच में मुझे चाहते हो, तो अपनी माँ का कलेजा लाकर मुझे दो।'

युवक ने कहा, 'तुमने भी क्या मांगा। यह इच्छा तो मैं आज ही पूरी कर दूँगा।' वह घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग में छुरा खरीदा और घर पहुँचा। माँ पलंग पर सोई थी, छुरा घोंपते ही आह की चीख निकली। उसने वही थाली ली जिसमें माँ रोज खाना खिलाती थी, माँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का कलेजा निकाला, थाली में रखा, कपड़े से ढाँका और रवाना हो गया।

रात अंधेरी थी। मार्ग में ठोकर लगी, वह लड़खड़ाया और गिर पड़ा। वह कुछ सम्हलता उससे पहले ही आवाज आयी, 'बेटा ! चोट तो नहीं आयी।' चौंककर उसने इधर-उधर झांका पर वहाँ कोई न था।

कुछ क्षण बाद फिर वही आवाज गूंजी। उसने गौर किया, आवाज थाली में से आ रही थी; उस कलेजे से, जिसका अणु-अणु माँ की ममता से भरा था। वह जैसे ही थाली उठाने लगा कलेजा फिर गुनगुनाने लगा, 'हाय रे लाल ! तेरे चोट तो नहीं आयी।'

शायद उसके स्थान पर पत्थर होता तो भी पिघल जाता लेकिन इन्सान... ! पता नहीं किन कठोरतम और निर्दयी पलों में वह धरती पर आया था, न पिघला सो न ही पिघला। उसने थाली उठायी रवाना हो गया। प्रेमिका के घर पहुँचा, देखा, दरवाजे पर ताले लगा था। दरवाजे पर काले अक्षरों में लिखे वाक्य को पढ़कर वह हक्का-बक्का रह गया। उस पर लिखा था, 'जो अपनी माँ का नहीं वो हमारा क्या होगा।'

इस दुनियाँ में ऐसे एक नहीं अनेक किस्से हैं। कामान्धता के कारण ही व्यक्ति उस हद तक गिरा है, जिस पर मानवता हमेशा शर्म करती है। इस देश में तब तक रावण जैसे लोग पैदा होते रहेंगे, सीता का अपहरण होता रहेगा, जब तक कामेच्छा पर लगाम न लगेगी। इसमें व्यक्ति जैसे-जैसे फंसेगा वैसे-वैसे धंसेगा। महावीर तट तक पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं, उस किनारे तक जहाँ संसार पीछे छूट जाता है, दो कदम संन्यास की ओर बढ़ जाते हैं।

आसक्त व्यक्ति श्रमण-धर्म को पहचान कर भी, आसक्ति छोड़ देता हो ऐसी बात नहीं है। जीवन के अन्तिम चरण में भी व्यक्ति की आसक्ति के महीन रेशे टूट नहीं पाते, महावीर और बुद्ध के वचनों का जो लोग मखौल उड़ाते हैं, कहते हैं, इन्होंने कर्मयोग की हत्या की है , वे गलत सोचते हैं। महावीर कर्मयोग के विरोधी नहीं है। वे चाहते हैं हर व्यक्ति अनासक्त कर्मयोगी बने, भरत और जनक़ की तरह। उस व्यक्ति को भला क्या कर्मयोगी कहा जायेगा, जो वृक्ष की एक टहनी पकड़कर लटका है। नीचे कुंआ है, कुंए में अजगर है, टहनी को चूहा काट रहा है। पल-दो-पल में टहनी टूटने वाली है। बचाने वाला कहता है, लो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं तुम्हें बचा लूँ। लेकिन व्यक्ति कहता है एक मिनट ठहरें। मधु-बूंद टपक रही है। एक बूंद का स्वाद तो और ले लूँ।

कितनी छिछली आसक्ति और गहरा सम्मोहन। एक बूंद के लिए भी व्यक्ति मौत के मुँह में जाने को तैयार हो जाता है, इसे अकर्मण्यता कहें या आसक्ति ?

महावीर केवल काम-भोगों को छोड़ने का ही नहीं कह रहे हैं, वे कहते हैं आसक्ति को छोड़ो। आसक्ति और सम्मोहन के कई ठौर-ठिकाने हैं। यहाँ गौरवर्ण के प्रति राग हो ऐसी बात नहीं है, काले का भी अपना राग है। शक्कर की मधुरता का तो सम्मोहन है ही, नमक के खारेपन का भी है। जैसे बिना शक्कर के दूध नहीं सुहाता वैसे ही बिना नमक की सब्जी भी रास नहीं आती। माना कि रोटी, कपड़ा और मकान जिंदगी की आवश्यकता है, पर आवश्यकता के प्रति आसक्ति तो आवश्यक नहीं है।

आध्यात्मिक जगत् में जितना हेय आसक्ति को माना गया है और किसी को नहीं। आसक्ति को ठेठ संसार कह दिया गया। जबकि अनासक्ति को साधना और समाधि के शास्त्र का पहला और अन्तिम चरण स्वीकार किया गया है। जिसकी आसक्ति टूटी उससे संसार छूट गया। आसक्ति ही संसार है। समाधि की चहल कदमी के लिए संसार को नहीं छोड़ना है, आसक्ति से छुटकारा पाना होता है। आसक्ति सेतु है, आत्मा और संसार के बीच का। अनासक्ति नौका है, आत्मा को संसार से समाधि की ओर ले जाने की। जिससे आसक्ति छूटी, उससे सब कुछ छूट गया। जिससे आसक्ति जुड़ी, वह सब कुछ छोड़कर भी कुछ भी न छोड़ पाया। इसलिए अध्यात्म, संसार से संन्यास की यात्रा नहीं, वरन् आसक्ति से निर्लिप्तता की यात्रा है।

तुम कमल हो और तुम्हारा परिवार उसकी पंखुरियाँ। संसार तो दलदल है। संसार में ऐसे जिओ जैसे कमल कीचड़ से निर्लिप्त होकर अपनी शोभा बढ़ाता है। कमल का कीचड़ में रहना, मनुष्य का संसार में रहना बुरा नहीं है। बुराई यही है कि कीचड़ कमल पर चढ़ आये, संसार हृदय में बस जाये।

तीन शब्द हैं– आवश्यकता, आकांक्षा और आसक्ति। महावीर आवश्यकता के कभी विरोधी नहीं रहे। अगर शरीर की आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान है तो इस आवश्यकता की पूर्ति होनी ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये, लेकिन आवश्यकताओं की पूर्ति तब गुनाह का बाना पहन लेती है जब आसक्ति और आकांक्षा के दीमक उससे सट जाते हैं। आवश्यकता दो रोटी की होती है, पर आकांक्षा बादाम, पिस्ते और मिठाई की। आवश्यकता दो साड़ी की होती है, पर आकांक्षा सौ साड़ी की। आवश्यकता कमरे की और आकांक्षा महल की। आवश्यकता और आकांक्षा में फर्क है। आवश्यकता का घड़ा भरा जा सकता है लेकिन आकांक्षा का, बे-तल का पात्र, दुष्पूर है।

आज के सूत्र में महावीर का अन्तिम संदेश है, अनुसरण का। श्रमण-धर्म को जानना ही पर्याप्त नहीं है, आवश्यकता है तदनुसार अनुकरण की। सत्य का ज्ञान करना जरूरी है, पर ज्ञात सत्य का आचरण करना भी अनिवार्य है। जब तक पुरजोर कोशिश न होगी बाहर निकलना सम्भव नहीं है।

जिस व्यक्ति ने अब तक सैकड़ों-हजारों सिगरेटों के पैकेट खाली किये हैं, क्या उसने उस पर लिखी वह वैधानिक चेतावनी नहीं पढ़ी है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। व्यक्ति रोज चेतावनी पढ़ता है, रात भर खाँसता है फिर भी पीता है। जानबूझकर अपने आपको फंसाता है, यही तो आसक्ति है। जिस दिन यह चेतावनी, तुम्हें चेता दे और तुम चेत जाओ उसी दिन, दिल से वह चीज निकल जाएगी, बिखर जाएगी। तब, अब तक जिस दिलोजान से सिगरेट पीते रहे, संसार में अटके रहे, उसी कर्दम में से एक कली बाहर आएगी। कली का यह बाहर निकलना ही जीवन के द्वार पर अनासक्ति की दस्तक है। उस दिन परिपूर्णता समझना जब यह कली कमल बन जाये, संसार में समाधि खिल आए, वासना से उपरत होते हुए निर्वाण आत्मसात् हो जाये।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य वाणी का, अंतर का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सत्य क्या है ? सम्भव है इस प्रश्न का उत्तर दुनिया में तुम्हें, सिवाय तुम्हारे कोई न दे पाएगा ! अगर किसी को पूछने से ही सत्य ज्ञात हो जाता या शास्त्रों के संदर्भों में मिल जाता तो महावीर और बुद्ध सत्य की खोज में घर परिवार त्याग कर अनजान जंगल में न जाते। सत्य का न तो उपदेश होता है और न ही शास्त्र। जैसे प्रेम का कोई शास्त्र नहीं होता, विधिवत् प्रशिक्षण नहीं होता वैसे ही सत्य का कोई शिक्षा-शास्त्र नहीं होता।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारा जीवन स्वयं में एक सुअवसर है। जीवन से जुड़े हुए जितने भी पहलू हैं, प्रत्येक की अपनी मूल्यवत्ता है। मनुष्य को चाहिये कि वह हर कदम सम्हाल कर रखे। जीवन मूल्यवान है, फिर चाहे वह अमीर का हो या गरीब का। ऐसा नहीं है कि एक सम्राट का जीवन बहुमूल्य है, वरन् एक भिखारी का जीवन भी उतना ही मूल्यवान् है, क्योंकि जीवन की दृष्टि से दोनों समान हैं। नीति कहती है कि वास्तविक सम्राट वह है, जो नगर में होने वाली किसी भिखारी की मृत्यु को भी अपनी मृत्यु माने।

सम्राट और भिखारी, गरीब और अमीर—ये भेद रेखाएं जीवन की दृष्टि से नहीं, अपितु व्यवहार की दृष्टि से है। कृष्ण हो या कंस, राम हो या रावण, ईसा हो या पांटियस, महावीर हो या गोशालक जीवन की दृष्टि से तो सबने जीवन जीया, लेकिन जीवन-शैली में फर्क पड़ा। किसी ने जीवन में दिव्यत्व हासिल किया और किसी ने पशुत्व। कोई अंधकार में जिया, कोई प्रकाश में।

जीवन का विकास या विनाश ये किसी और पर नहीं अपितु स्वयं हम पर निर्भर हैं। सृष्टि पर प्रत्येक शिशु का आगमन सत्य रूप ही होता है लेकिन झूठ, चोरी और बेइमानी का घालमेल वह उन सब लोगों से सीखता है जिनके साथ वह पलता है, पढ़ता है, बढ़ता है।

यह जीवन की दोहरी नीति है कि व्यक्ति बातें तो ईमान की करता है, तर्क सत्य के पेश करता है लेकिन जीवन इन सबसे कोसों दूर मिलता है। होता कुछ है, दिखाया कुछ जाता है। कहा कुछ जाता है, किया कुछ जाता है। यह जीवन की दोहरी नीति है। इसलिए मुझसे यदि कोई पुछे तो, मैं कहता हूं कि दो मुहाँ सर्प नहीं, अपितु मनुष्य होता है। असलियत छिपाई जाती है नकली चेहरा पेश किया जाता है। दिन भर बेईमानी की जाती है, एक दूजे के प्रति घृणा और वैमनस्य की कटारी चलाई जाती है और सभाओं में ईमानदारी से जीने का संदेश दिया जाता है, प्रेम और प्यार की बातें बताई जाती हैं। भाषण अहिंसा के और भोजन अंडे का। यह मनुष्य के दो मुंहे व्यक्तित्व की निशानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं तो और क्या है ?

लोग अपनी असलियत को छिपाते हैं और बातचीत में बड़ी-बड़ी डींगें हाँकते हैं। मैं उन लोगों से अपने-आपको बहुत दूर रखना चाहता हूँ, क्योंकि ये लोग कथनी और करनी में कहीं तालमेल नहीं बैठा पाते हैं। घर में खाने को रोटी नहीं होगी और अपनी पहुँच सत्ता शिखर तक बताएंगे, इसी तरह राजनीति में लोग लगातार झूठ, फरेब, बेइमानी का सहारा लेकर जीवन-मूल्यों को आहत कर रहे हैं।

महावीर का आज का सूत्र मनुष्य के दोहरेपन को समाप्त करने के लिए ही है। उनका सूत्र है–

सच्चम्मि वसदि तवो,
सच्चम्मि संजमो तह वसे सेसाविगुणा।
सच्चं णिबंधणं हिय
गुणाणमुदधीव मच्छाणं ॥

सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है। जैसे समुद्र जलचर जीवों का उत्पत्ति स्थान है वैसे ही सत्य समस्त गुणों का कारण है।

महावीर कहते हैं, 'सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है।' महावीर की बात महत्वपूर्ण है। वे तपस्या को सत्य में ढूंढ रहे हैं, संयम और साधना के समस्त आयामों को भी सत्य में खोजते हैं। चाहे हम तप करें या संयम का अनुपालन, अगर यह सब कुछ सत्य से ओतप्रोत नहीं है तो जीवन और अध्यात्म के साथ बेइंसाफी होगी, क्योंकि जीवन की महत्ता सत्य में जीने में है।

तुलसीदास धर्म के समस्त अंगों को सत्य में ही स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सृष्टि के जितने भी सुकृत्य हैं सब का निवास सत्य में है, 'धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।' इसे हम यों समझें जैसे सागर में समस्त नदियाँ आकर समा जाती हैं वैसे ही सत्य है, जिसमें धर्म के समस्त गुण समा जाते हैं। सम्भव है, व्यवहार में हम सभी संयम का पालन कर लेंगे, सामायिक और प्रतिक्रमण भी कर लेंगे, पर भीतर से अगर यह सब कुछ नहीं होगा, तो यह भी जीवन का दोहरापन होगा। अगर तुम्हारे जीवन में किसी प्रकार की त्रुटि है तो उसे छिपाओ मत, प्रकट कर दो, क्योंकि मवाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को जितना ज्यादा दबाया जाएगा, उतना ही ज्यादा वह शरीर के लिए हानिकारक होगा ।

चोले को बदलना अलग बात है और जीवन को बदलना अलग बात है। वेश का परिवर्तन व्यावहारिक रूप में दीक्षा है, लेकिन महावीर की नजरों में, जीवन में, सत्य का अनुष्ठान, यह वास्तविक प्रव्रज्या है। अंधकार से प्रकाश की ओर गति तभी हो पाएगी जब अपने जीवन में बुराइयों को चुन-चुन कर बाहर निकालोगे, क्योंकि बुराइयों को जितना ज्यादा भीतर दबाओगे वे अपनी शाखाएँ फैलाती जाएंगी और जड़ें गहरी करती जाएंगी । अगर संयम के मार्ग में कोई साधक दोहरी नीति अपनाता है, तो उसकी साधना स्वयं में एक प्रश्न चिह्न है । प्रव्रज्या सत्य को दबाने के लिए नहीं; सत्य को स्वीकार करने, प्रगट करने के लिए है । अगर एक साधु की आवश्यकता है कि वह 'कोलगेट पेस्ट' का प्रयोग करे, तो यह सोचकर, छिपकर उसका उपयोग नहीं करना चाहिए कि समाज क्या कहेगा, संभव है मुनि के लिए 'पेस्ट' से मंजन करना अनुचित है, पर छिपकर करना क्या इससे ज्यादा अनुचित नहीं है । जो कुछ करते हो खुले-आम करो । हो सकता छिपकर करने से तुम व्यवहार में चारित्र-निष्ठ श्रमण कहला लोगे, लेकिन भीतर में ऐसा करके इस चारित्र-पालन से भी सिवा कर्म-बन्धन के कुछ न कर पाओगे। जहर चाहे खुले आम पिओ या छिपकर वह तो अपना प्रभाव दिखाएगा ही ।

महावीर आज के सूत्र में जिस सत्य की चर्चा कर रहे हैं, उसका अर्थ है—ऐसे जीना जिसमें प्रवंचना न हो । बाहर-भीतर में दोहरी नीति न हो । मुनि 'समाज क्या कहेगा' यह सोचने के लिए नहीं बने हो, मुनि बने हो, अपने मन को पढ़ने और समझने के लिए, जीवन की वास्तविकता को आत्मसात् करने के लिए । संयम जीवन में छिपकर किया जाने वाला कार्य, सिद्धातों का हनन, समाज के साथ नहीं अपितु अपने साथ धोखा है । इस आत्मप्रवंचना को कब तक करते रहोगे ? पेश करो अपनी आवश्यकताओं और समस्याओं को समाज के सामने, वह आज नहीं तो कल अवश्य स्वीकार करेगा । अगर हमने ऐसा नहीं किया तो आने वाला कल ऐसा होगा, जब फूल तो रहेगा लेकिन फूल में भी सड़ांध होगी । इसलिए स्वयं को पूरी तरह खुले-आम पेश करो। चाहे दोष हैं तो दोष और गुण हैं तो गुण—किसी को भी पर्दे में छिपाकर मत रखो । वे लोग कभी भी अशुभ कर्म नहीं करते हैं जिनका जीवन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खुली किताब की तरह है। सम्भव है ऐसे करने में तुम्हें इच्छित परिणाम न मिले, पर भविष्य की उज्ज्वलता को कोई रोक नहीं पायेगा।

गांधीजी ने अपनी आत्म कथा में लिखा था कि जहाँ सत्य की चाह और उपासना है, वहाँ परिणाम चाहे हमारी धारणा के अनुसार न निकले, कुछ और ही निकले, परन्तु वह अनिष्ट बुरा नहीं होता और कभी-कभी तो आशा से भी अधिक अच्छा हो जाता है।

सत्पथ पर चलने के लिए जागरूकता एवं विवेक की आवश्यकता है। जब हम धैर्य और विवेक के साथ सत्पथ पर गमन करेंगे तब सत्य हमारे अंधकार को तिरोहित कर हमें प्रकाशित करेगा। माना कि जीवन में घोर अंधेरा है लेकिन जिनके पास सच्चाई का दिया है वे सब सदैव प्रकाश में जीते हैं। जीवन में साहस और आत्मविश्वास बटोरें, अगर ऐसा न किया तो सब कुछ करके भी अंधेरे में रह जाओगे।

हम अपना विकास स्वयं करें और इस चिंतन के साथ कि मुझे अपने व्यक्तित्व का विकास करना है। अगर इस व्यक्तित्व-विकास में सत्य का आशीर्वाद साथ लिए चलते रहे, तो महावीर कहते हैं कि तपश्चर्या और संयम स्वतः जीवन में अवतरित हो जाएंगे। रजोहरण से चींटी को बचाना अलग बात है और विचारों से हिंसा को हटाना अलग बात है। अगर विचारों में हिंसा विद्यमान रहेगी तो तुम चींटी को बचाकर भी चींटी की हत्या करते रहोगे, क्योंकि हिंसा का सम्बन्ध व्यवहार से कम, निश्चय से ज्यादा है।

महावीर ने प्रव्रज्या चारित्र-पालन के लिए कम, सत्य के अनुसंधान के लिए ग्रहण की थी, क्योंकि सत्य को जब तक जाना पहचाना नहीं जाएगा, सत्य से हम रु-ब-रु नहीं होंगे तब तक हम कैसे ग्राह्य को पहचान पाएंगे और कैसे अग्राह्य को। करणीय और अकरणीय का विभाजन कैसे कर पाएंगे ? नग्न होकर साधु बन जाना अलग बात है, और अन्तर्मन से निर्दोष हो जाना अलग बात है। बाहर से कपड़े हर कोई उतार सकता है, और बाथरूम में उतारता भी है, लेकिन क्या वहाँ निर्दोष भाव पैदा होता है ? महावीर ने कभी नग्न होने का अभ्यास नहीं किया। ऐसा नहीं कि पहले लंगोटी पहनी हो और फिर धीरे-धीरे लज्जा त्याग कर उसे छोड़ा हो। वहाँ जो कुछ हुआ, सहज हुआ। जब घर छोड़ा था तब सब कुछ छोड़ दिया था। भीतरी वस्त्र तक न रखा, क्योंकि अगर प्रकृति के साथ जीना है तो प्रकृति जैसा ही होना पड़ेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैसे ही महावीर निर्वस्त्र हुए, देवों ने उन्हें एक वस्त्र दिया, उन्होंने सहजभाव से ग्रहण कर लिया। ब्राह्मण भिखारी ने माँगा, आधा वस्त्र दे दिया, शेष आधा भी जब कंधे से उड़ गया तो उसे भी छोड़ दिया और इस तरह महावीर सहजतया निर्वस्त्र हो गये।

महावीर सत्य के पक्षधर हैं और हम चौबीसों घंटे असत्य में जी रहे हैं। अगर हमारे रक्त की जाँच कराइ जाए तो जैसे 'सूगर' की बीमारी का पता चलता है वैसे ही असत्य की बीमारी का पता चलेगा, क्योंकि यह रोग हर किसी के साथ जुड़ा हुआ है। हमारे खून की हर बूंद में झूठ के कण बिखरे हुए हैं। हम बिना कारण झूठ बोलते हैं। मैं देखता हूँ लोग यात्रा करते हैं 'कालका एक्सप्रेस' से और कहेंगे 'राजधानी एक्सप्रेस' से आए हैं। खाएंगे सूखी रोटी और कहेंगे मालपूआ खाकर आया हूँ। अपनी इज्जत को बढ़ाने के लिए बेइमानी का सहारा लेकर औरों की नजर में तो ऊंचे उठ जाओगे, परन्तु एक दिन ऐसा आएगा कि स्वयं की नजरों में ही गिर जाओगे।

सम्भव है, सच बोलने से हमारा पद हमारे हाथ से छूट जाए, हमारी प्रतिष्ठा में आंच आ जाए या पैसा छिटक जाए। लेकिन ऐसा करके हम अपने आप को बचाए रखेंगे। कहीं ऐसा न हो कि पूंजी, पद और प्रतिष्ठा को बचाने के चक्कर में हम स्वयं ही दिग्भ्रमित हो जाएं। अगर इन सबको खोकर हमने स्वयं को बचाए रखा, अपने ईमान और धर्म को बचाए रखा तो यह जीवन का अभिनिष्क्रमण होगा, क्योंकि महावीर सत्य में संयम स्वीकार करते हैं, तपस्या स्वीकार करते हैं, धर्म के समस्त गुण स्वीकार करते हैं। सम्भव है सत्य के मार्ग में कांटे ही कांटे मिले, पर कांटों से गुजरकर ही तो फूलों तक पहुँचा जाता है। सम्भव है तुम्हें बार-बार यह दिखाई दे कि दुनिया में विजय झूठ की हो रही है, पर मेरी यह बात सदा याद रखना कि अन्तिम विजय सदा सत्य की ही होती है।

मैंने सुना है अहत् बुद्ध जेतवन में चातुर्मास कर रहे थे। अर्हत् के अमृत सन्देशों का श्रोताओं के माध्यम से ऐसा प्रचार हुआ कि हजारों की भीड़ उनका प्रवचन सुनने उमड़ पड़ी। अर्हत का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। जो वस्तुतः धर्मानुरागी थे, वे अतीव प्रफुल्लित थे। पर कुछ कुटिल जनों को जो नगर के धर्म-गुरु कहलाते थे, अर्हत की ख्याति रास नहीं आयी। उनके प्राणों में अर्हत की नगर में उपस्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांटे-सी चुभने लगी और वे ऐसी योजना बनाने लगे ताकि जनता में अर्हत के प्रति घृणा पैदा हो जाए। उन्होंने एक ऐसा षडयंत्र रचा कि अर्हत मुंह दिखाने लायक भी न रहें। उन्होंने अर्हत की ही एक शिष्या परिव्राजिका सुन्दरी को धन का लोभ देकर अपने षडयंत्र में सम्मिलित किया। सुन्दरी उस युग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, लेकिन भगवान के उपदेशों से प्रभावित होकर उनकी शिष्या बन गयी।

कहते हैं भाई-भाई को नीचे गिराता है, लोहा-लोहे को काटता है वैसे ही संसार में गुरुओं की निन्दा भी शिष्यों से ही होती है। और तो और क्राइस्ट को उन्हीं के शिष्य जुडास ने सिर्फ तीस रुपये में बेच दिया था। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें गुरु के महत्त्व का ज्ञान नहीं होता, वे शिष्य तो बन जाते हैं, किन्तु कंचन और कामिनी के आकर्षण से मुक्त नहीं हो पाते और गुरु को दगा तक दे बैठते हैं। ओशो रजनीश के अमेरिका स्थित रजनीशपुरम् के विनाश का मूल कारण स्वयं ओशो या उनके सिद्धांत इतने नहीं थे, अगर एक महिला, जो उनकी प्रथम शिष्या थी, उन्हें धोखा न देती तो वह सब कुछ नहीं होता जो हुआ। जब-जब भी महावीर जैसे महापुरुष पैदा हुए हैं, तब-तब गोशालक जैसों ने शिष्य बनकर धोखा किया।

परिव्राजिका सुन्दरी धन के लोभ में गुरुद्रोह कर बैठी। षडयंत्रकारी तथाकथित धर्मगुरुओं के संकेत पर सुन्दरी रात में जैतवन जाती और सुबह जैतवन से लौटकर नगरवासियों को कहती, बुद्ध के आमंत्रण पर रात्रि-सुख देने गई थी, वहीं से वापस लौटी हूँ।

सुगंध को फैलाने में समय लगता है, लेकिन दुर्गंध ? इसकी गति तो सुगंध से सौ गुनी तेज होती है। सुन्दरी की विकृत चर्चा सारे नगर में फैल गई। सुन्दरी नगर की श्रेष्ठ सुन्दरी थी। नगर में सैकड़ों लोग उसके प्रति आकर्षित भी थे अतः उसकी बात लोगों को प्रभावित करने लगी। लोग सोचते, जो दिखने मात्र से हमारे मन को विकृत कर देती है, वह बुद्ध को सदा पास में रहकर क्या विकृत नहीं कर पाएगी !

बुद्ध की अपकीर्ति पूरे नगर में फैल गई ! कुछ दिन पहले जहाँ प्रवचन में हजारों-हजार लोग पहुँचते थे, वहाँ गिने-चुने दस-बीस लोग बचे। शिष्य कहते, प्रभु आप इस मिथ्या आरोप का खंडन क्यों नहीं करते ? भगवान मुस्कुराते, कहते, सत्य के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं होती। भगवान को सत्य पर अटूट श्रद्धा थी। वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानते थे सत्य अगर है तो जीतेगा, आज नहीं तो कल जीतेगा।

समय बीतता गया और बुद्ध की अपकीर्ति न केवल नगर में, अपितु आसपास के गावों में भी फैल गई। दुनिया का तो स्वभाव है, तुम अगर किसी महिला को शीलवती घोषित करोगे तो लोग विश्वास नहीं करेंगे। लेकिन किसी के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाओगे तो लोग तुम्हारी हर बात मानने को तैयार हो जायेंगे। अगर यहीं से बाहर जाकर किसी को कहोगे कि मैंने महाराज के पास अलौकिक शक्ति देखी तो लोग मानने को तैयार नहीं होंगे। और अगर यह कहोगे कि मैंने महाराज को अमुक गलत आचरण करते देखा तो सब हाँ में हाँ मिलाने लग जाएंगे। और बुद्ध के साथ भी यही हुआ। और तो और स्वयं बुद्ध के अनुयायी भी सुन्दरी की बात पर विश्वास करने लगे। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी भगवान का मौन नहीं टूटा। वे इस विषय में किसी भी प्रकार का खंडन करने के लिए तैयार नहीं हुए। भगवान की अपूर्व सहिष्णुता एवं तितिक्षा देख सुन्दरी को अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। भला कोई आदमी पहाड़ से सिर टकरायेगा तो पहाड़ का क्या बिगड़ेगा।

तथागत की शांति को अचल देख विरोधियों ने नए षडयंत्र का सूत्रपात किया और सुन्दरी की हत्या करवाई। नगर में नई चर्चा प्रारम्भ हो गई, 'तथागत ने सुन्दरी की हत्या करवा दी है।' अब तो लोग बुद्ध के प्रति आक्रोश जतलाने लगे। जनता बुद्ध के विरोध में खड़ी हो गई और उन तथाकथित धर्मगुरुओं ने मौके का लाभ उठाया। वे सब इकट्ठे होकर सम्राट के पास गये, कहा 'राजन् ,! सुन्दरी जो बुद्ध की अंकशायिनी थी, आजकल दिखाई नहीं देती है, लगता है लोकनिन्दा के भय से बुद्ध ने उसकी हत्या करवा दी है।'

सम्राट के आदेश पर जैतवन घेर लिया गया। सैनिकों ने उसकी व्यापक छानबीन की। अर्हत् बुद्ध की कुटिया के पीछे, फूलों के ढेर में सुन्दरी का शव मिला। बुद्ध से कहा गया, 'तुम अर्हत् भगवान,बुद्ध और प्रज्ञावान कहलाते हो, अपने प्रवचनों में बातें तो ऊंची-ऊंची करते हो और आचरण इतना निम्न।'

बुद्ध तब भी मौन रहे। झूठ के लिए सफाई पेश करनी पड़ती है, अगर सत्य के लिए भी ऐसा ही किया गया तो सत्य झूठ के हाथों नीलाम हो जायेगा। बुद्ध की कुटिया के पास सुन्दरी का शव मिलने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से, उनकी रही सही प्रतिष्ठा भी रसातल में चली गई। भिक्षुओं को आहार मिलना मुश्किल हो गया। और तो और गलियों से गुजरना भी मुश्किल हो गया। भिक्षु जहाँ से गुजरते लोग कहते, ये हत्यारे बुद्ध के शिष्य हैं, ये हत्यारे गौतम के शिष्य हैं। बुद्ध की ओर से प्रतिकार न होने के कारण हालत और बिगड़ गई। लोग बुद्ध के शिष्यों को घर की ओर आता देख दरवाजे बंद करने लगे।

हालत बिगड़ती देख एक दिन सारे शिष्य एकत्रित होकर बुद्ध के पास पहुँचे और निवेदन किया, 'भगवन्! पानी सिर के ऊपर से बहने लग गया है, अगर अब आपने प्रतिकार नहीं किया तो हम सब लोगों का जीवन भी खतरे में पड़ जायेगा।'

तब तथागत मुस्कुराये और धीमी आवाज में कहा, 'शिष्यों! मौन रहो। असत्य सदा असत्य ही रहेगा, सत्य की विजय अवश्य होगी। संभव है कुछ दिनों के लिए असत्य सिंहासन पर बैठकर राज कर ले, लेकिन अंत में मुंह के बल उसी को गिरना पड़ेगा। मेरे प्यारे शिष्यों, तुम धैर्य रखो और अपनी श्रद्धा की अग्नि परीक्षा होने दो। यह कसौटी का अवसर है, इसके पश्चात जो श्रद्धा निखरेगी वह ज्योतिर्मय होगी।

झूठ अपनी पराकाष्ठा को छू चुकी थी। समय ने पासा पलटा, अब बारी सत्य के विजय की थी। एक दिन मदिरालय में वे गुंडे शराब पी रहे थे, जिन्होंने धर्म-गुरुओं के निर्देश पर सुंदरी की हत्या की थी। संयोग से कुछ सैनिक भी वहाँ थे, हत्यारे नशे में चूर थे। एक दूजे से लड़ते-झगड़ते उन्होंने सुन्दरी की हत्या और धर्मगुरुओं के षडयंत्र का पर्दाफाश कर दिया। सैनिकों ने तत्काल उन्हें बंदी बना लिया। राजसभा में उन्होंने संपूर्ण घटना बताई कि किस प्रकार उन्होंने हत्या की और परिव्राजिका सुन्दरी का शव फूलों के ढ़ेर में छिपाया। बात विद्युत् गति से नगर में फैल गई। तथाकथित धर्मगुरु निन्दित हुए और बुद्ध प्रशंसित। स्वयं सम्राट् ने क्षमा मांगी। तब अर्हत ने सम्राट् से कहा, 'राजन्! मैंने पहले ही कहा था, सत्य अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ है।'

नीत्से ने मानव जाति का गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने मनुष्य के भीतर की एक-एक ग्रन्थि को पकड़ा। और अगर नीत्से को पूछो, तो वे यही रहस्योद्घाटन करेंगे कि मनुष्य झूठ के बिना जी नहीं सकता। झूठ हमारे रोम-रोम में समाया हुआ है। सत्य सीखने के लिए गुरु की शरण में जाना पड़ता है, लेकिन झूठ आदमी घर बैठे सीख लेता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद्प्रवत्तियों को प्रवेश कराने के लिए प्रयास करना पड़ता है लेकिन असद् प्रवृत्तियाँ सहज में ही उत्पन्न हो जाती हैं। दुर्गंध सहज पैदा हो जाती है और सुगंध के लिए प्रयास करना पड़ता है। शायद दुनिया का कोई शास्त्र, या कोई चिन्तक यह नहीं कहता है कि झूठ बोलना चाहिए। बचपन से अब तक सैकड़ों किताबें पढ़ी होंगी। सभी में सच्चाई की बातें लिखी हैं, ईमान से जीने का आदेश दिया गया है, लेकिन हमारे व्यक्तित्त्व में किताबों की अच्छी बातें तो नहीं उतर पाई, हाँ झूठ और बेईमानी अवश्य हमारी पिछलग्गू हैं। हम पढ़ते तो अच्छी बातें हैं और कहते भी अच्छी बातें हैं लेकिन जीवन इसके विपरीत चलता है। ईमानदारी के लिए परिश्रम करना पड़ता है और बेईमानी बिना किसी प्रयास के आराम से कर लेते हैं।

कहने में भले ही कह दें कि हमें अहिंसा प्रिय है, अचौर्य प्रिय है, सत्य प्रिय है किन्तु यह वास्तविकता नहीं हैं। क्योंकि हमारी जीवन शैली और होती है, और अभिव्यक्ति की शैली और। उपदेश ऊंचाई का और आचरण नीचाई का। यदि मैं प्रवचन का विषय रखूं कि 'सत्य कैसे बोलें' तो प्रवचन में गिने-चुने लोग आयेंगे किन्तु यदि मैं प्रवचन का विषय रखूं 'झूठ बोलना, चोरी करना कैसे सीखें' तो यहाँ पैर रखने को जगह नहीं मिलेगी। 'आयकर कैसे चुकाएँ' अगर इस विषय पर संगोष्ठि आयोजित की जाए तो लोग गिने-चुने आयेंगे और 'आयकर कैसे बचाएं' इस विषय पर संगोष्ठी रखी जाए तो लोग उमड़ पड़ेंगे। जो लोग हरिश्चन्द्र की सत्य कथाएँ पढ़ते-सुनाते हैं उन लोगों को जरा पूछो कि तुम्हारे जीवन में सत्य कहीं आगे-पीछे भी है।

ऐसा ही हुआ एक नगर में एक पंडित जी बाहर से कथा बांचने के लिए बुलाये गये। उन्होंने सत्यनारायण की कथा कहीं। हरिश्चन्द्र की कहानी को इतने मनोरंजक रूप में पेश किया कि सब लोग पंडित जी की जय-जयकार करने लगे। रवानगी से पूर्व उन्होंने व्यवस्थापकों से आने-जाने का प्रथम श्रेणी का किराया मांगा। उनका एक मित्र जो उनके साथ आया था, पंडित जी के द्वारा हरिश्चन्द्र की कथा सुनकर प्रभावित भी बहुत हुआ था। उसने पूछा–पंडित जी ! हम आये तो द्वितीय श्रेणी से हैं फिर किराया प्रथम श्रेणी का क्यों ? पंडित जी मुस्कुराये और कहने लगे, लगता है मेरी हरिश्चन्द्र की कथा का नशा तुम पर भी सवार हो गया। अरे ! ये कहानियाँ तो सतयुग की हैं, हम कलियुग में जी रहे हैं। अगर प्रथम श्रेणी का किराया न लिया तो हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बच्चों को क्या खिलायेंगे।

सही में कलियुग है। नीचे से लेकर ऊपर तक झूठ ही झूठ समाई है। चाहे वक्ता हो या श्रोता–बातें ईमान की करेंगे और काम बेईमानी का। जिस मंच पर खड़े होकर अहिंसा का भाषण देंगे उसी के नीचे बम की फैक्टरियाँ चलायेंगे। यही जीवन का दोहरापन है। आज मानव मन की यही प्रवृत्ति है।

लोग कहते हैं, सत्य बहुत कड़वा होता है, हर कोई हजम नहीं कर पाता। मुझे यह बात नहीं जंचती अगर सत्य कड़वा होगा तो मधुर क्या होगा ? हमने अपनी कठोर वाणी से सत्य की दुर्दशा कर डाली। इस बात में भी असत्य का मिश्रण है कि हमसे झूठ सहन नहीं होता। अगर तुम सत्य सुनना चाहते हो, तो सत्य बोलना सीखो। सत्य सदैव मधुर होता है। बशर्ते अभिव्यक्त करने की शैली हमारे पास हो। व्यास कहा करते थे, 'सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात', सत्य भी ऐसा बोलो जिसमें मधुरता का मिश्रण हो। सोचो, बोलने से पहले सोचो, तुम जिस पर सत्य की मोहर लगा रहे हो, क्या वह सत्य है ? सत्य मात्र वह नहीं हैं जो तुम कह रहे हो। सत्य की संभावना वहाँ भी है, जो तुम्हें कुछ कह रहा है। हम सत्याग्रही बनने के बजाय सत्यग्राही बनें। मैं कहता हूँ वह सत्य नही हैं, जो सत्य है वह मैं कहता हूँ। अपने क्रोध और अहंकार की तुष्टि के लिए कहा गया सत्य भी भला सत्य कैसे हो सकता है ? हम सत्य-भाषण नहीं करते हैं, अपने अहंकार का पोषण करते हैं। प्रत्येक सत्य को समझाया जा सकता है, बशर्ते हमारे पास समझाने की शैली हो।

सत्य हमेशा सामने कहा जाता है। पीठ पीछे जो कहा जाता है, उसे मैं सत्य नहीं, निंदा कहता हूँ। सत्य और निंदा में फर्क है। हम लोग निंदा की भाषा तो जानते-समझते हैं, लेकिन सत्य की भाषा हमने नहीं सीखी। हमारी नाइन्साफी यह है कि जब तक सत्य से हमारे स्वार्थों की पूर्ति होती है, तब तक हम सत्य बोलते हैं। किन्तु सत्य से जब हमारे स्वार्थों की पूर्ति नहीं होती तब हम झूठ का सहारा लेना शुरू कर देते हैं। जीवन में कुछ नैतिक कर्त्तव्य होते हैं, उन्हें सफल करना हमारा दायित्व है। लेकिन अगर हम अहंकार की पुष्टि और स्वार्थ की पूर्ति के लिए, अपने नैतिक कर्त्तव्यों से पीछे खिसकते हैं, तो यह आत्म-प्रवंचना नहीं तो और क्या है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हम कहते हैं 'सत्यमेव जयते', 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ,पता नहीं ऐसी कितनी अच्छी-अच्छी बातें हम कहा करते हैं, लेकिन जीवन में इस वाक्य को हम पूरी तरह से बदल देते हैं। जबान कहती है 'सत्यमेव जयते' और हमारा जीवन कहता है 'असत्यमेव जयते'। गीत गुन-गुनाये जाते है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के और हमारा आचरण कहता है 'असत्यं शिवं सुन्दरम्।' इसलिए भगवान कहते हैं–सत्य को पहचानो। सत्य को पहचानने बाद जो कुछ किया जायेगा वह कल्याणकारी होगा, वह श्रेयस्कर होगा अभी तक हम दूसरों के कृत्य का अनुसरण करते आये हैं। हमने अभी तक अपने जीवन की तराजु में सत्य को नहीं तौला है, हम भेड़ चाल से उबरकर बाहर आयें और जीवन के सत्य का अनुसंधान करें।

महावीर ने कहा,'सत्य में संयम का वास है। त्याग और तप का वास है, यदि हम मात्र परंपराओं का निर्वाह करते रहेंगे तो महावीर के अनुयायी तो कहलायेंगे, पर महावीर नहीं बन पाएंगे। हम राग में राग छेड़ते रहेंगे, धुन में धुन मिलाते रहेंगे लेकिन इतना सब कुछ करने में भी भीतर की वीणा में झंकार पैदा नहीं हो पाएगी।

मुझे याद है एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन कहीं जा रहे थे। मार्ग में उनका मित्र मिला, उसने कहा 'मुल्ला कहाँ, जा रहे हो ? नसरुद्दीन ने कहा, 'क्या तुम्हें पता नहीं नगर में शास्त्रीय संगीत का आयोजन हो रहा है, उसे ही सुनने जा रहा हूँ।' मित्र ने कहा, 'मुल्ला तुम्हें ! शास्त्रीय संगीत का न तो ज्ञान है, न रुचि।' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा,'आस-पास के सभी पड़ोसी शास्त्रीय संगीत सुनने जा रहे हैं; मैं नहीं गया तो सभी पड़ोसी कहेंगे कि मुल्ला को संगीत का ज्ञान नहीं है। मेरा जाना तो अनिवार्य है।' नसरुद्दीन संगीत सभा में पहुँच गये। उन्हें शास्त्रीय संगीत का ज्ञान तो था ही नहीं, सुनकर बोले, 'ये बंदा रोता क्यों हैं ?' और मुल्ला ने भी रोना प्रारंभ कर दिया। आसपास बैठे श्रोताओं ने कहा 'मुल्ला ! संगीत-सभा में ये विघ्न क्यों उत्पन्न करते हो।' मुल्ला ने कहा, 'तुम्हें शास्त्रीय संगीत का ज्ञान कहाँ ? मैं धुन में धुन मिला रहा हूँ।' हम भी ऐसे ही परम्पराओं का बोझ ढो रहे हैं। परम्परा के नाम पर धुन में धुन मिला रहे हैं। अनुकरण के पूर्व भी सत्य की खोज अनिवार्य है।

महावीर तो यहाँ तक कहते हैं, तुम सत्य और असत्य के भेद को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानो, जो सम्यक मार्ग मिले उसे स्वीकार करो। अन्यथा किसी जन्म में ईसाई धर्म से, किसी जन्म में मुस्लिम धर्म से, किसी जन्म में जैन-धर्म से बंधे रहोगे। हर जन्म के पश्चात चोला बदलता रहेगा। हमें धर्म का नहीं जीवन का परिवर्तन करना है। जीवन के परिवर्तन का अर्थ है, व्यक्ति सत्य का स्वयं अनुसंधान करे। सत्य की खोज स्वयं करें। सत्य मात्र वाणी तक न रहे, हृदय में उतरे। हम सत्य के हस्ताक्षर भी वाणी से करते आये हैं। हमें सत्य को हृदय में उतारना है और हृदय से उसे प्रकट करना है। जब सत्य हृदय से प्रगट होगा तो वह न परम्परा रहेगा, न झूठ रहेगा, वह रहेगा मात्र सत्य। और फिर जो कदम आगे बढ़ेगा वह सम्यक् होगा। अन्यथा कामनाओं की पूर्ति के लिए, अपनी वासना की पूर्ति के लिए इंसान झूठ का सहारा लेता रहेगा। सत्य के दस्तखत केवल जुबान तक ही न हो, हृदय में भी हो। सत्य के लिए जीवन समर्पित करने वाले ही सत्य को पा सकते हैं।

लोग शिकायत करते हैं, अपने मन की चंचलता के बारे में। उनकी शिकायत भी वाजिब है और मन की चंचलता भी। पूछते हैं मुझसे कि इस चंचलता को शांत करने की तरकीब बताइए। इन सब लोगों के लिए कोई तरकीब नहीं हो सकती जो चौबीसों घंटे झूठ में जी रहे हैं, बेईमानी और चोरी में जी रहे हैं। अपने भीतर इतनी झूठी बातें पाल रखी हैं कि इन झूठी बातों के जर्रे-जर्रे की जांच पड़ताल करवानी होगी। हम ध्यान कर रहे हैं, मालाएं जप रहे हैं, पूजा प्रार्थनाएं कर रहे हैं, लेकिन अपने ईमान को सुरक्षित नहीं रख पा रहे हैं, तो यह सब केवल ऊपरी लीपापोती होगी, अंतरंग में परिवर्तन की कोई रेखा नहीं उभर पाएगी। स्वयं जैसे हो वैसा स्वीकार करो।

लोग दान देते हैं, अगर उनसे जाकर पूछो कि इनमें कौन ऐसा है जो दान के लिए दान देता हो, जो इसलिए देता हो, क्योंकि उसे आवश्यकता से अधिक मिला है। लोग दान देने के लिए नहीं, अपितु पाने के लिए करते हैं। यह सोचकर देते हैं कि आज एक देंगे तो कल दस मिलेगा। अगर इन सब लोगों को बता दिया जाए कि देने से कुछ नहीं मिलेगा तो कोई कुछ नहीं देगा। सब लोग देना बंद कर देंगे। ये दान देते हैं, लेकिन पुण्योपार्जन की कामना के साथ या आँख की शर्म के कारण। दुकान पर समाज के पाँच प्रतिष्ठित लोग आ गए, दान मांगा, ना कहना नामुमकिन हो गया। इच्छा हो या न हो, दान तो देना ही पड़ेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा ही हुआ कुछ लोगों ने मिलकर निर्णय किया कि नगर में धर्मशाला नहीं है; एक धर्मशाला बनाएंगे। उन्होंने एक संस्था बनाली। सारे शहर से चंदा एकत्रित किया, लेकिन दो लाख रुपये भी एकत्रित नहीं हो पाए। अंत में किसी ने सुझाव दिया कि शहर के आयकर आयुक्त को इस संस्था का अध्यक्ष बना लो फिर देखते हैं कि कौन दान नहीं देता।

ऐसा ही हुआ, आयकर आयुक्त अध्यक्ष बना दिए गए। लोग उन्हें साथ लेकर मुश्किल से २५-३० दुकानों में गये और धर्मशाला के लिए २० लाख एकत्रित हो गये।

लोग दान के कारण दान नहीं देते, अपितु फंस जाने के कारण देते हैं। देने में, देने की भावना कम दूसरे की आँख के शर्म का प्रभाव ज्यादा हो जाता है। इसलिए भिखारी कभी एकांत में भीख नहीं मांगता, दस लोगों के बीच मांगता है, क्योंकि वह जानता है कि धनपति ५० पैसे के लिए लोगों के बीच स्वयं को कंजूस सिद्ध नहीं करेगा। धर्म-कर्म-दया-दान—सब कुछ तो आज दिखावे मात्र के लिए रह गए हैं।

यह हमारी विडम्बना है कि हम जीवन की वास्तविकता से हटकर दिखावेपन में ज्यादा विश्वास करने लगे हैं। दुनिया में जितने भी अत्याचार और अनाचार होते हैं, मूल कारण मनुष्य की वे दुष्प्रवृत्तियां हैं जिनके चलते वह ऐसा करने के लिए आकर्षित होता है। एक झोंपड़ी में रहने वाला व्यक्ति अपनी नजरें सदा उसी बंगले की ओर केन्द्रित रखता है जहाँ सुख -सुविधाओं का सैलाब उमड़ रहा है। वह देख रहा है कि उसके पैरों में एक फटी-पुरानी चप्पल भी नहीं हैं और पड़ौसी के बंगले के बाहर चार-चार कारें खड़ी हैं। उसे खाने के लिए दो जून रोटी भी नसीब में नहीं है, वहीं पड़ौसी के यहाँ रोज मिठाइयाँ खाई जा रही हैं। वह दिन भी उसे याद है जब उसकी बिटिया की शादी के लिए आए हुये बारातियों को मिठाई खिलाने के लिए उसने दो हजार रुपये अपनी पत्नी का मंगलसूत्र गिरवी रख कर पाये थे, वहीं पड़ोसी की बिटिया की शादी पर लाखों रुपये तो सिर्फ मौज-मस्ती और मदिरा पर ही उड़ा दिए गये थे। ऐसा सब कुछ होने पर व्यक्ति किसी अनुचित रीति से भी धनोपार्जन का उपाय करता है। जिन्हें हम सामाजिक बुराइयाँ कहते हैं वे सब इन्हीं रीति-नीति से पनपती हैं।

आज शादी-विवाह में अथवा पुत्र-पुत्री के जन्म-दिन पर जो किया जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहा है, सिवाय दिखावे के और क्या है, चाहे धार्मिक कृत्य हो या गृहस्थमूलक–जो कुछ किया जा रहा है, इसलिए क्योंकि पड़ोसी ने भी वैसा किया है। पड़ोस के गाँव में जब मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा हुई थी तब हेलीकाप्टर से पुष्प वर्षा की गई थी–आज हमारे गाँव में प्रतिष्ठा है, हम भी इसलिए हेलीकाप्टर से फूल बरसाना चाहते हैं, क्योंकि ऐसा न करने पर हमारी नाक कटने का भय है। हमारे लिए यह बात गौण है कि पुत्री के विवाह में खर्च करने हेतु हमारा सामर्थ्य कितना है, खासबात यह हो जाती है कि पड़ोसी ने कितना व्यय किया था। पड़ोसी यानी हमारा दुश्मन। हम इसलिए पड़ोसी से ज्यादा खर्च करना चाहेंगे ताकि उसकी नजरें हमारे सामने झुकी रहें। पड़ोसी को झुकाने के लिए या उसे नीचा दिखाने के लिए किया जाने वाला फिजूल खर्च हमारी संकुचित मानसिकता का प्रदर्शन है।

पता है, दहेज देने की परम्परा क्यों शुरू हुई ? किसी ने अपनी पुत्री को विवाह पर दो साड़ियाँ दी, उसके पड़ोसी ने उसे नीचा दिखाने के लिए तीन दी, और इसी प्रकार प्रतिस्पर्धा में यह क्रम बढ़ता गया। अभी कुछ दिन पूर्व एक महाशय अपनी पत्नी को साथ लेकर मेरे पास आए, कहने लगे, महाराज जी ! इसे समझाइये, मेरी पुत्री के ससुराल वाले कहते हैं कि हमें दहेज में कुछ नहीं चाहिए परन्तु ये अड़ी है कि मैं तो दहेज में ५१ साड़ियाँ ही दूंगी। मैंने अपनी नजरें उस बहन की ओर की तो उसने कहा, महाराज जी ! ये फिजूल में अपनी बात पर अड़े हैं। मेरे पड़ोसी की पुत्री का जब विवाह हुआ था तब उसने ४१ साड़ियाँ दी थीं, अगर मैंने दो चार और बढ़ाकर न दी तो मेरी प्रतिष्ठा पर चोट नहीं लगेगी !

हम जो कुछ दे रहे हैं, लड़की को नहीं अपने अहंकार को दे रहे हैं। इसलिए दे रहे हैं कि अगर न दिया तो अहंकार पर चोट लगेगी। व्यक्ति प्रत्येक चोट को बर्दाश्त कर सकता है, परन्तु अपने अहंकार की चोट को नहीं।

हम जो कुछ कर रहे हैं देखा देखी कर रहे हैं। जिन आकाक्षाओं के चलते हम दुःखी और विक्षिप्त हो रहे हैं, वे हमारी नहीं हैं, पड़ोसी के द्वारा पैदा की गई हैं, उधार हैं, बासी हैं। पहले तुम्हारे मन में, घर में कार लाने की आकांक्षा नहीं थी और न ही आवश्यकता। लेकिन आज आकांक्षा कर रहे हो, क्योंकि तुम्हारे इर्द-गिर्द दोनों ओर पड़ोसियों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के घर में कारें हैं। हम ऐश्वर्य इसलिये पाना चाहते हैं, क्योंकि पड़ोसी का ऐश्वर्य हमें खटक रहा है। गहने खरीदेंगे–भले ही बच्चों को भूखा रखना पड़े। कार खरीदना चाहेंगे–भले ही बच्चों को पढ़ा न पाएं।

धार्मिक कृत्यों में भी इसी आडम्बर ने प्रवेश किया है। 'अमुक' महाराज का नगर में प्रवेश हुआ तो उनकी शोभा यात्रा में पाँच हाथी थे, तो 'ये' महाराज इसलिये कार्यकर्ताओं का उलाहना दे रहे हैं, क्योंकि उनके नगर-प्रवेश के दौरान मात्र दो ही हाथी थे। यह प्रतिस्पर्धा है और यही प्रतिस्पर्धा समाज में ईर्ष्या, वैमनस्य और मूल्य-हीनता की गंदगी फैलाती है।

'अमुक' महिला ने सोलह व्रत किये। उसके पीहर वालों ने इसके उपलक्ष्य में चार सोने की चूड़ियां दीं। पड़ोस की महिला ने भी सोलह उपवास किये थे, लेकिन उसकी ननद इसलिये उस पर ताना कस रही थी, क्योंकि उसके पीहर से एक अँगुठी तक नहीं आई थी। सास कहने लगी, बहु तुम्हारे पीहर वालों ने तो हमारी नाक कटा दी। देखो ! पड़ोसी की बहु ने सोलह उपवास किये, पीहर से चार सोने की चूड़िया आई हैं, पर तुम्हारे.....?

यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि हम लोगों ने धार्मिक अनुष्ठानों में भी इतना जबर्दस्त आडम्बर प्रारम्भ कर दिया है कि निर्धन व्यक्ति उस धर्म से जुड़ा रहने पर हीन भावना का शिकार होता है। यह अतिशयोक्ति नहीं वरन् वास्तविकता है कि बहुत सी निर्धन महिलाएँ इसलिए लम्बी तपश्चर्या नहीं कर पाती हैं, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से उनका परिवार इतना सम्पन्न नहीं है कि उसके लिए शोभा-यात्रा निकाली जा सके, स्वामी-वात्सल्य किया जा सके और महापूजन करवाया जा सके। अगर यह सुबह कुछ नहीं किया जाता है तो नाक कटने का भय है।

कल की बात है एक महिला मुझसे कह रही थी, मैं मासक्षमण (तीस उपवास) करना चाहती हूँ पर.....। मैंने पूछा दिक्कत क्या है ? कहने लगी, 'मेरे पति रेलवे में क्लर्क हैं, वे स्वामी वात्सल्य (जीमणवारी) नहीं करा पाएंगे, परिवार वालों को 'प्रभावना' नहीं दे पाएंगे–ऐसी स्थिति में मैं लम्बी तपस्या कैसे कर सकती हूँ ?'

मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि तपस्या हम इच्छाओं के नियमन के लिए करते हैं या अपने वैभव प्रदर्शन के लिए। अगर समाज में ऐसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही सब कुछ चलता रहा तो आने वाला कल ऐसा होगा, जब धर्म के द्वार मात्र पूँजीपतियों के लिए खुले रहेंगे। इसलिए महावीर कहते हैं कि 'सत्य में तप का वास है।'

आखिर सत्य क्या है ? क्योंकि किसी का सत्य किसी के काम नहीं आया। दुनिया में जितने महापुरुष हुए, सभी ने 'सत्य' को ढूँढ़ने में ही अपनी साधना का उपयोग किया। आप जानना चाहते हैं कि 'सत्य' क्या है ? इसका कोई जवाब न होगा। यह बताया जा सकता है कि 'सत्य' को कैसे पाया जाए, क्योंकि सत्य को हमेशा स्वयं में खोजना होता है, उसे कोई दूसरा नहीं बता सकता और दूसरे का बताया हुआ सत्य कभी सत्य नहीं होगा, क्योंकि उसमें हम बार-बार प्रश्नचिह्न खड़ा करते रहेंगे। तब 'सत्य' भी संशय हो जाता जब उसमें प्रश्न चिह्न खड़े हो जाते हैं। इसलिए सत्य का अनुभव किया जा सकता है—समझाया नहीं जा सकता।

सत्य क्या है ? सम्भव है इस प्रश्न का उत्तर दुनिया में तुम्हें, सिवाय तुम्हारे कोई न दे पाएगा ! अगर किसी को पूछने से ही सत्य ज्ञात हो जाता या शास्त्रों के संदर्भों में मिल जाता तो महावीर और बुद्ध सत्य की खोज में घर परिवार त्याग कर अनजान जंगल में न जाते। सत्य का न तो उपदेश होता है और न ही शास्त्र। जैसे प्रेम का को शास्त्र नहीं होता, विधिवत् प्रशिक्षण नहीं होता वैसे ही सत्य का कोई शिक्षा-शास्त्र नहीं होता। प्रशिक्षित सत्य भला सत्य रह भी कैसे पाएगा।

हम सत्य को खोजने में भी कतराते हैं और सोचते हैं कि पहले यह पता लग जाए कि सत्य क्या है, तत्पश्चात् तलाश करें। मुझे हंसी आती है लोगों की बचकानी बातों पर। अगर यह ज्ञात हो गया कि सत्य क्या है ? तो फिर तलाश का प्रयोजन ही क्या ? एक बात तय है कि सत्य कभी तर्क में पैदा नहीं होता, अपितु श्रद्धा में पैदा होता है। सत्य को आत्मसात करने के लिए अज्ञात में भी प्रवेश करना पड़ेगा, अंधेरे में भी जाना पड़ेगा और अपरिचित से भी मैत्री करनी पड़ेगी। इसलिए यह मत पूछो कि सत्य क्या है ? यह पूछो कि सत्य को पाने का मार्ग क्या है ? सत्य कोई सिद्धांत नहीं है, जिसे समझाया जा सके यह तो अनुभूति है। जीवन की जीवन्त अनुभूति, इसलिए इसे जीवन से तो प्रमाणित किया जा सकता है, शब्दों से नहीं।

कहते हैं, यीशु जब सूली पर लटकने जा रहे थे तो सूली लगाने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व रोमन गवर्नर पांटियस पायलट ने पूछा कि इतना बता दो कि सत्य क्या है ? यीशु जो जीवन भर लोगों को उपदेश देते रहे, गवर्नर के प्रश्न पर चुप हो गये, पायलट की ओर देखा लेकिन जवाब न दिया और बिना कुछ कहे ही सूली पर चढ़ गए, क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर हो ही नहीं सकता। दुनिया में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जिन्हें मात्र समझा जा सकता है कहा नहीं जा सकता। कोई पूछे पानी कैसे बना ? जवाब दिया जा सकता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बना। हाइड्रोजन कैसे बना ? जवाब होगा कि न्यूट्रान, इलेक्ट्रान और पाजिट्रान—तीनों के सम्मिश्रण से हाइड्रोजन बना। अगर विज्ञान से पूछा जाए कि 'न्यूट्रान' कैसे बना तो क्या कोई वैज्ञानिक इसका जबाब दे पाएगा ? नहीं, यह नामुमकिन है।

मैंने सुना है, जापान के सम्राट ने झेन फकीर लिंग शू को राजमहल में प्रवचन के लिए आमंत्रित किया। निमंत्रण राजा का था, अतः लिंग शू पहुँच गये। सम्राट ने खड़े होकर प्रार्थना की, 'सत्य क्या है' विषय पर अपना उद्‌बोधन दें। कहते हैं लिंग शू मंच पर पहुँचे और सामने रखी टेबल पर हाथ से प्रहार किया, जोर की आवाज हुई और सन्नाटा छा गया ! सब लोग उत्सुक होकर बैठ गये, स्वयं सम्राट भी कि पता नहीं लिंग शू अब अपना क्या वक्तव्य देंगे ? लिंग शू कुछ क्षण मंच पर खड़े रहे और सन्नाटे को तोड़ते हुए कहा, 'बस प्रवचन पूरा हो गया।' वे मंच से उतरे सीधे बाहर चले गये। सम्राट ने वजीरों से कहा, यह कैसा प्रवचन ! लिंग शू ने तो मेरे प्रश्न का जवाब तक न दिया।

यह प्रश्न है भी ऐसा जिसका जवाब देना मुश्किल है। अगर कोई समझने वाला हो तो लिंग शू उस मौन में बहुत कुछ कह गये, क्योंकि जिस बात को वाणी से नहीं कहा जा सकता वह मौन से मुखरित होती है। कहते हैं' जब लिंग शू मरणशय्या पर थे तो समस्त शिष्य इकट्ठे हो गये। उन्होंने जिंदगी में हजारों बार लिंग शू से यह प्रश्न किया था कि सत्य क्या है ? लेकिन कोई जबाब न मिला था। शिष्यों ने सोचा कि लिंग शू अभी 'निर्वाण' के करीब हैं, शायद जाने के पूर्व कुछ कह जाएं। सभी ने एकत्रित होकर लिंग शू से कहा कि सद्‌गुरु ! हम आपसे जीवन का अंतिम प्रश्न पूछना चाहते हैं। लिंग शू ने कहा, पूछो। शिष्यों ने पूछा, 'सत्य क्या है ?' कहते हैं प्रश्न सुनते ही लिंग शू ने अपनी आँखे मूंद ली; सन्नाटा छा गया, उनके इस व्यवहार से सभी आश्चर्यचकित थे। लेकिन लिंग शू 'चुप' ही विदा हो गये, आँखे नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खोली ।

सबमें यह प्रश्न खड़ा रहा कि 'सत्य क्या है' ? लिंग शू के इस संकेत को कोई समझ न पाया–'मैं आँख बंद कर रहा हूँ, तुम देख रहे हो–क्या इसके बाद कूछ जानना शेष रह जाता है ?'

लिंग शू चले गये । उनके जीते जी भी शिष्य पूछते रहे कि सत्य क्या है और मरने के बाद भी । शायद न केवल लिंग शू अपितु कोई भी भगवत् पुरुष अभी तक यह जवाब नहीं दे पाया कि सत्य क्या है। जड़ की व्याख्या की जा सकती है, पुद्गल का विवेचन किया जा सकता है, लेकिन चेतना के बारे में सिर्फ अनुभूति की जा सकती है । अगर शरीर- विज्ञान की पुस्तक देखो तो प्रत्येक अंग के संबंध में, प्रत्येक नाड़ी के बारे में, प्रत्येक हड्डी के बारे में सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याख्या मिल सकती है लेकिन आत्मा के बारे में किसी शरीर-विज्ञान में कोई व्याख्या नहीं मिल सकती । मकान में ईट, चूना, पत्थर जो कुछ भी लगा है, सब की व्याख्या की जा सकेगी लेकिन आकाश प्रदेश की कभी कोई व्याख्या नहीं कर सकेगा । धर्म और अध्यात्म, जन्म-जीवन-मृत्यु, संसार का ऐसा कोई तत्त्व नहीं है, जिसके बारे कुछ न कहा जा सके लेकिन आत्मा और सत्य–दो ऐसे तत्त्व हैं जिनकी सिर्फ उपलब्धि और अनुभूति की जा सकती हैं इसलिए केवल ईसा और लिंग शू ही सत्य के मामले में मौन नहीं रहे अपितु अब तक कोई भी 'सत्य क्या है' इसका संपूर्ण जवाब नहीं दे पाया ।

सत्य एक ऐसा तत्त्व है, जहाँ दिशा दर्शन तो संभव है लेकिन मार्गदर्शन नहीं । सत्य कहकर नहीं कहा जा सकता है यह तो अनुभव है, अन्तश्चक्षु का । इसलिए इसकी जब-जब भी व्याख्याएं की जाएंगी, तब-तब परिवेश से व्याख्याएं होंगी । शंकर कहते हैं जो बाहर से जो ब्रह्म दिखाई देता है वह मिथ्या है, भ्रम है और जो अन्तश्चक्षु से दिखाई देता है वह ब्रह्म है । इसलिए यह मत पूछो कि सत्य क्या है । इसे जानकर कभी उपलब्ध नहीं किया जा सकेगा । उपलब्धि तब होगी, जब तत्संबंधी परिभाषा हमारे हाथ लग जाएगी । हमारे द्वारा यही चूक होती रही है कि जब भी सद्गुरु का सामिप्य मिला हम पूछते रहे कि सत्य क्या है । अगर यह ज्ञान एक दूजे को दिया जा सकता तो हर गुरु शिष्य को यह ज्ञान दे देता और दुनिया में सत्य की खोज के मार्ग अवरुद्ध हो जाते । इसलिए अगर पूछना/जानना चाहते हो तो यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूछो/जानो कि सत्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। एक अंधे आदमी को कैसे बता पाओगे कि प्रकाश क्या है! आज तक कोई भी जन्मान्ध को यह नहीं बता पाया कि प्रकाश की परिभाषा क्या है! हाँ, प्रकाश को उपलब्ध कैसे किया जाए, इसके बारे में संकेत दिया जा सकता है, दिशा दर्शन किया जा सकता है, जानकारी दी जा सकती है। कैसे समझाओगे एक अंधे आदमी को प्रकाश की परिभाषा ? तुम कहोगे प्रकाश है। वह कहेगा—अगर है तो अनुभूति कराओ। मेरे पास हाथ है, मैं छूकर देखना चाहता हूँ कि प्रकाश क्या है। क्या कभी छू पाओगे प्रकाश को ? यही जबाब दिया जाएगा कि प्रकाश का कभी स्पर्श नहीं किया जा सकता। वह कहेगा—मेरे पास नाक है, सुंघा कर बता दो कि प्रकाश कैसा है, पर यह भी नामुमकिन है। कैसे सुंघाओगे ? न इसमें सुगंध है, न दुर्गंध। सच तो यह है कि यह पूरी तरह से गंधमुक्त है अगर तुमने इसके लिए भी ना कह दिया, तो वह कहेगा, मेरे पास कान हैं, सुना दो। मैं संगीत को सुन सकता हूँ, आवाज को सुन सकता हूँ तो प्रकाश को क्यों नहीं सुन पाऊँगा ? मेरे पास जीभ भी है, मुझे चखा दो ताकि मुझे प्रकाश का ज्ञान हो जाए।

नहीं ! यह शक्य नहीं हैं। न सुंघाना शक्य है, न दिखाना शक्य है, न सुनाना शक्य है और न ही स्पर्श करवाना।

कहते हैं, बुद्ध के पास इसी तरह एक जन्मांध व्यक्ति को लाया गया, जो कहता था कि दुनिया में प्रकाश नहीं है। जब मैं प्रत्येक तत्त्व का अनुभव कर सकता हूँ तो प्रकाश का क्यों नहीं ? सब लोग बुद्ध से कहने लगे—आप इसे प्रकाश के बारे में समझा दें। बुद्ध ने कहा 'प्रकाश व्याख्या की वस्तु नहीं है। इसकी आँखे ठीक करा दो, प्रकाश की अनुभूति स्वतः हो जाएगी।'

लोगों ने ऐसा ही किया। एक वैद्यराज जो नेत्र पटल की झिल्लियों को व्यवस्थित कर अंधे को भी आंखे देने की कला जानता था, उसके पास उस अंधे का छः माह तक इलाज करवाया गया।

अंततः उसे दिखाई देने लगा। वह दौड़ा-दौड़ा आया बुद्ध के पास और कहने लगा, 'प्रभु ! आपकी कृपा से मुझे प्रकाश दिखाई देने लगा है।'

बुद्ध ने कहा—'चल, एक काम कर। अब तू प्रकाश को देख रहा है, इसे छुआ कर बता दे; सुंघा कर या सुना कर बता दे ताकि मुझे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पता लग जाए कि प्रकाश क्या होता है ।' उसने कहा, 'प्रभु ! यह तो अशक्य है । मैं नहीं जानता कि इसकी व्याख्या मैं कैसे करूं ।'

बुद्ध मुस्कुराए, कहने लगे, 'यही बात तो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि प्रकाश की तो केवल अनुभूति और उपलब्धि ही की जा सकती है, व्याख्या नहीं ।' अगर व्याख्या की गई तो उसमें तोड़ मरोड़ होगी और अधकचरा ज्ञान, अज्ञान से भी बदतर है । क्या तुम उसे ज्ञान कहोगे? जब एक अंधे की समझ में यह आ जाए कि खीर, बगुले की गर्दन की तरह टेढ़ी होती है, तो वह उस खीर की परिभाषा हमेशा 'टेढ़ी खीर' ही करेगा । इसलिए कोई भी बुद्ध पुरुष अज्ञान के मार्ग से ज्ञान देने का प्रयास नहीं करेंगे ।

आज के सूत्र में महावीर ने जिस सत्य की चर्चा की, मैं भी उस सत्य की व्याख्या नहीं करूंगा, न परिभाषाएँ दूंगा । मेरी नजर में सत्य केवल शून्य है । और शून्य को केवल वही व्यक्ति उपलब्ध कर सकता है, जिस व्यक्ति ने कोरे कागज में भी सूत्रों को पढ़ने की कला जानी है ।

महावीर कहते हैं, 'सत्य में संयम का वास है, तप का वास है, समस्त गुणों का वास है । जैसे समुद्र मत्स्य आदि समस्त जलचरों का उत्पत्ति स्थान होता है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का उद्‌गम स्थल है।' महावीर का यह वचन हमें बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूर करता है । एक तपस्वी, संयमी व्यक्ति भी परमज्ञान को उपलब्ध करने के पश्चात अपने संदेश में यही कह रहा है कि तप हो या संयम, सब कुछ सत्य में है । जैसे पानी के अभाव में मछली का अस्तित्व संभव नहीं है वैसे ही सत्य के अभाव में धर्म और अध्यात्म की संभावना नजर नहीं आती ।

सत्य की खोज में, अगर सागर में ऊपर-ऊपर तैरते रहे तो सिवा तिनकों के कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है । डूबो, गहरे डूबो । बिना बोध के जो कुछ बाह्य आचरण की व्यवस्था की जा रही है, यह सब कुछ तैरना तो है, लेकिन उपलब्धि नहीं है । उपलब्धि गोताखोर को होती है । जितने अधिक गहरे उतरोगे, उतनी ही ज्यादा उपलब्धि होगी। अगर बाहर-बाहर तैरते रहे तो तिनके हाथ लगेंगे और गहरे उतरे तो मोती । बाहर की आंखे जो कुछ देख रही हैं, उसका अंतिम चरण अंधकार है और भीतर की आंखो से जो कुछ देखोगे उसका अंतिम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरण प्रकाश है। यह हम पर निर्भर है कि हम जीवन की उपलब्धि अंधकार के रूप में चाहते हैं या प्रकाश के रूप में। अगर उपलब्धि में अंधेरा चाहते हो तो बाहर की आंखों को खुली रहने दो और अगर प्रकाश चाहते हो तो भीतर की आंखें खोलो। यही अन्तश्चक्षु का विमोचन होगा। शिव के तीसरे नेत्र का उद्‌घाटन। सच में वही जिसे महावीर प्रज्ञा-नेत्र कहते हैं। यह प्रज्ञा नेत्र ही वास्तव में प्रज्ञादीप को प्रकट करता है। प्रज्ञादीप की निर्धूम ज्योति ही निर्वाण को उपलब्ध होती है। वह ज्योति, ज्योति शिखरों को सजाती है। विश्व उसकी युगों तक वंदना करता है और सत्य उस दिये को सदा बाती प्रदान करता है।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीप बनें देहरी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"एक व्यक्ति वह है, जो केवल परमात्मा का नाम-स्मरण करता है और एक व्यक्ति वह है, जो परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। इनमें यथार्थतः परमात्मा की उपासना वही कर रहा है, जो परमात्मा की आज्ञाओं का पालन कर रहा है। अपने कर्त्तव्यों को छोड़, जो मात्र कृष्ण-कृष्ण रटता है, वह भला कृष्ण को कैसे पा सकेगा। आवश्यकता धर्म के कथन की नहीं, धर्म के परिपालन की है, क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये ही तो स्वयं कृष्ण ने जन्म लिया था।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना जीवन के रूपान्तरण का नाम है। ज्ञान और चारित्र का समन्वय ही जीवन का साधना-मार्ग है। क्रियाहीन ज्ञान और ज्ञानहीन आचरण सदैव अपूर्ण कहलाएंगे। जहाँ बगैर ज्ञान की क्रिया अंधेरे में थेंगले लगाना है, वहीं आचरण रहित ज्ञान, मात्र मस्तिष्क में सूचनाओं का भार ढोना है।

महावीर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि– तीन ज्ञान के धारक थे। जीवन के तीन दशक बीतने के बाद उनके संन्यास के लिये उठाये गये कदम यह संकेत देते हैं कि परम ज्ञान की प्राप्ति मात्र वेद, पिटक और आगमों का अध्ययन करने से नहीं, वरन् उन्हें जीवन में आत्मसात् करने से है। महावीर और बुद्ध ने परमज्ञान उपलब्ध करने के लिये, न कहीं गुरुओं के पास जाकर प्रवज्या ग्रहण की और न ही किसी गुफा में बैठकर शास्त्रों का अध्ययन किया। दोनों ने ही परम ज्ञान की उपलब्धि के लिये, आचार-शुद्धि को अनिवार्य माना और अपने जीवन में ज्ञान और चारित्र का समवेत दीप प्रज्वलित करने के लिये अभिनिष्क्रमण किया।

महावीर ने बात-बात में शास्त्रों के कोरे आश्वासन और तर्क-बुद्धि लगाने वालों को सदैव फटकारा, क्योंकि ऐसी स्थिति में आचरण सत्य के आधार पर नहीं, अपितु शास्त्रों के आधार पर चलता है। शास्त्र हों या गुरु सभी मार्ग का दिशा निर्देश दे सकते हैं, लेकिन जीवन कल्प तभी होता है, जब व्यक्ति आत्म अनुभवों के आधार पर, अपनी पगडण्डी का निर्माण स्वयं करता है, आत्मदीप बनकर अपने जीवन का मार्ग वह स्वयं प्रशस्त करता है। जीवन निर्माण के लिए मात्र शास्त्र-अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, आवश्यकता सम्यक् आचरण की भी है। शास्त्रों से व्यक्ति सत्य ढूंढ़ सकता है, लेकिन सत्य में जी नहीं सकता। सत्य केवल भाषण तक सीमित हो यह ठीक नहीं है, सत्य आचरण में भी होना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तुक्रियावान्पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषध मातुराणां,
न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥

पंडित नारायण कहते हैं, बहुत से लोग शास्त्र पढ़कर भी मूर्ख होते हैं। वास्तव में विद्वान वही है, जो क्रियावान है। क्योंकि चिंतित औषधि भी नाम मात्र से रोगी को निरोग नहीं कर देती है। काफी महत्वपूर्ण उदाहरण दिया है चिंतित औषधि का। तुम रोगी हो, पर तब तक रोग-मुक्त कैसे हो पाओगे जब तक ज्ञात औषधि का सेवन न होगा। मात्र औषधि का नाम रटने से या शास्त्रों के पाठ पढ़ने से जीवन-कल्याण मुमकिन नहीं है। रोग-मुक्ति के लिये न केवल औषधि का ज्ञान आवश्यक है अपितु सेवन भी आवश्यक है। संसार-मुक्ति के लिए आवश्यक है, मुक्ति का ज्ञान और तदनुरूप आचरण।

मात्र ज्ञान ही जीवन-कल्प के लिये पर्याप्त होता, तो विज्ञान ने ऐसे-ऐसे यन्त्र विकसित कर दिये है, जिनमें सैकड़ों शास्त्रों के वचनों को रिकार्ड किया जा सकता है और हजारों पण्डितों के मस्तिष्क को इकट्ठा किया जा सकता है, पर उन यन्त्रों में मात्र सूचनाओं का संग्रह ही होगा। उन यन्त्रों के लिये यह संभव नहीं है कि वे उन सूचनाओं के आधार पर किसी का जीवन-कल्प कर सकें।

किसी वस्तु का नक्शे-किताब या सूचनाओं के आधार पर ज्ञान पाना अलग बात है, और प्रत्यक्ष में उस वस्तु के दर्शन से प्राप्त होने वाली अनुभूति अलग चीज है। एक प्रोफेसर ध्यान और योग के बारे में, चेतन और अवचेतन मन के बारे में, प्रत्याहार और कुण्डलिनी-जागरण के सम्बन्ध में घंटों भाषण दे सकता है, लेकिन स्वयं ध्यानमग्न नहीं हो सकता, योग में जी नहीं सकता और कुण्डलिनी-जागरण कर नहीं सकता। षट्-चक्र भेदन के सम्बन्ध में निबन्ध लिखकर स्वर्ण पदक पाने वाले व्यक्ति स्वयं का एक चक्र का भेदन भी कर नहीं पाते। ये प्रोफेसर, विद्वान या पण्डित उस चम्मच की तरह हैं, जो हलुए को इस बर्तन से उस बर्तन में तो डाल सकते हैं, किन्तु स्वयं हलवे का स्वाद चख नहीं सकता। यह तो ठीक वैसे ही अपने सिर पर शास्त्रों का भार ढोन हुआ, जैसे गधा चन्दन का भार ढोता है। मैंने सुना है, यूरोप में किसी भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छात्र का ज्ञान तब तक अधूरा माना जाता है जब तक उस ज्ञान को व्यक्ति अनुभवों के साथ घटित न कर ले। इसलिए वहाँ कोई छात्र जब विद्यालयीय ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे यह सलाह दी जाती है; कि वह सुनी-सुनाई बातों का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए, विश्व भर की यात्रा करे।

यह तो महावीर और बुद्ध भी प्रव्रजित होने से पूर्व जानते थे कि किसी को पीड़ा देना पाप है, झूठ बोलना पाप है, चोरी करना अपराध है और आवश्यकताओं से अधिक परिग्रह रखना अनुचित है। वे यह भी जानते थे कि दान और दया से पुण्य होता है। अंहिसा और करुणा से संसार में सुख का वातावरण फैलता है और प्यार व प्रेम से सामाजिक उच्छृंखलता समाप्त होती है। पर जानने मात्र से पाप से निवृत्ति और पुण्य में प्रवृत्ति संभव नहीं होती। जीवन में मात्र सत्य का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है अपितु ज्ञात सत्य का आचरण भी आवश्यक है। वह व्यक्ति अपने आपको सही सलामत कैसे रख पायेगा, जो यह जानते हुए भी अग्नि में हाथ जलाता है, कि अग्नि में हाथ डालने से हाथ जलता है। उसे सत्य का ज्ञान तो हो गया है लेकिन ज्ञान आचरण में रूपान्तरित नहीं हो पाया है। इसलिए यह मत कहना कि महावीर और बुद्ध ने सत्य को जानने के लिये संन्यास लिया था। हकीकत में ज्ञात सत्य को आचरण में उतारने के लिये, उन्होंने संन्यास लिया था।

पहले ज्ञान और पीछे आचरण, 'पहलूं ज्ञान नें पीछे क्रिया'। मैं इस सन्दर्भ में कुछ और बातें कहना चाहता हूँ। इन दोनों में कोई भी पहले पीछे नहीं हैं। ऐसा नहीं हैं की पहले शास्त्रों को पढ़ो फिर जीवन में उतारो। ऐसी बात होती तो विष्णु शर्मा कहा करते थे – 'अनन्त पारं किल शब्द शास्त्रं।' शास्त्रों का कोई अन्त नहीं है और जितने शास्त्र पढ़ते जाओंगे, उतने ही संशय खड़े होते जायेंगे, अपने आप को तर्क बुद्धि से भर दोगे। मात्र शास्त्रों का पठन, तर्क-बुद्धि को परिपक्व कर देगा, पर जीवन संस्कार नहीं कर पायेगा। अगर यह सोचते रहोगे कि पहले शास्त्रों को पढ़ लूँ फिर आचरण में उतारूंगा, तो दुनिया में शास्त्रों की कोई कमी नहीं है। एक जन्म नहीं, सात-सात जन्मों तक भी पढ़ते रहोगे, तो भी शास्त्रों का अन्त नहीं आयेगा। हमारे जीवन के जितने घन्टे शेष हैं, उससे भी कहीं अधिक संसार में शास्त्र हैं। इसलिये यह सोच कर स्वयं को आचरण-शून्य न करें कि पहले भलीभाँति शास्त्रों को पढ़ लूँ फिर जीवन में उतारूंगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान और आचरण के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के मार्ग को अपनाना पड़ेगा। वैज्ञानिकों के लिए सत्य वह नहीं है, जो कल जाना जायेगा। वहाँ वह सत्य है, जो आज जाना गया है। वहाँ आज का ज्ञान, आज का सत्य है और कल का ज्ञान, कल सत्य होगा। भले ही आज का सत्य कल झुठलाया जाये। पर आज तो वही सत्य है, जो आज जाना है, इसलिए वैज्ञानिकों की भाषा में यह कभी नहीं लिखा जाना चाहियै कि कल जो जाना गया वह मिथ्या था। कल तक जितनी खोज की गयी थी, उस आधार पर कल का सत्य था और आज जितनी खोज आगे बढ़ी है, उस आधार पर आज का सत्य है। अगर आज की खोज के आधार पर हम कल के सत्य को झुठला सकते हैं तो, आने वाले कल की खोज के आधार पर आज की खोज को भी झुठलाया जा सकता है। इसलिए सत्य की खोज का कोई अन्त नहीं है। आज जो जाना उसे आज का सत्य मानकर जीवन में स्वीकार करें और कल जो जानें, उसे कल स्वीकार करें। जीवन में ज्ञान और चारित्र की धारा, एक साथ बहनी चाहिये।

आज का, महावीर का सूत्र उन्हीं लोगों को जगाने के लिये है जो, मात्र उपदेश और भाषण देते हैं, शास्त्रीय वचनों की दुहाई देते हैं, आचरण को दर किनार कर। महावीर का सूत्र है–

भणन्ता अकरेन्ताय, बन्धमोक्ख पदूण्णिणो
वायविरियमेतेण, समासासेन्ति अप्पयं ॥

जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों के बारे में कहते तो बहुत कुछ हैं, किन्तु करते कुछ भी नहीं, वे ज्ञानवादी केवल वाणी की वीरता से ही अपने आपको आश्वासन देते हैं।

महावीर कहते हैं, 'जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों के बारे में कहते तो बहुत हैं, किन्तु करते कुछ भी नहीं।' इस बात को गहराई से समझें। दुनिया में अब तक संसार, संन्यास और समाधि– इन तीनों के बारे में इतने ग्रन्थ लिखे गये हैं, इतने भाषण दिये गये हैं कि यदि उन्हें जिन्दगी भर पढ़ते रहो, सुनते रहो तो भी अन्त नहीं आयेगा। आचरण शून्य उपदेशक इन सिद्धान्तों के बारे में चर्चा तो खूब कर लेगा, तर्क काफी दे देगा, पर संसार से नहीं छूट पायेगा। वह सबको समझायेगा संसार छोड़ो, क्रोध छोड़ो, मान छोड़ो, माया छोड़ो, कटु भावनाओं का त्याग करो। लेकिन स्वयं इन्हीं में डूबा रहेगा। मंच पर घंटों दहेज विरोधी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाषण और घर जाकर अपनी ही बहुओं को जलाना, धर्म-सभाओं में शराब के विरोध में घंटों भाषण और शाम को मधुशाला में पहुँचना, न्यायालय के आगे जाकर सत्याग्रह का आन्दोलन और रात को वही तस्करी का व्यवसाय, जीवन की दोहरी नीति नहीं तो और क्या है। ये वो इन्सान हैं, जिनको दो मुँहा मानव की संज्ञा दी जानी चाहिये।

क्या मिलिये ऐसे लोगों से, जिनकी सूरत छिपी रहे।
नकली चेहरा सामने आये, असली सूरत छिपी रहे।

दुनिया ऐसे लोगों से भरी हुई है, जिनकी कथनी कुछ और करनी कुछ है।

आज के सूत्र में, महावीर ने, उन लोगों को लताड़ा है जो केवल भाषणबाजी में विश्वास रखते हैं। वेद व्यास ने भी ऐसे लोगों का जीवन, शून्य माना है। महाभारत में वे कहते हैं–

श्रृणुयक्ष कुलंतात, न स्वाध्यायो न श्रुतम्
कारणं हि द्विजत्वेचवृत्त मेव न संशयः।

ब्राह्मणत्व की असली परिभाषा दी है वेदव्यास ने। ब्राह्मणत्व में न कुल कारण है, न स्वाध्याय और न शास्त्र श्रवण। निस्सन्देह ब्राह्मणत्व का हेतु आचरण है।

वेद व्यास ने बात पते की कही है। ब्राह्मणत्व का हेतु आचरण। ब्राह्मण अर्थात जो ब्रह्म में रमण करे, बह्म में जीये। उसे ब्राह्मण मत समझना जो ब्रह्म की परिभाषा करे। बह्म की परिभाषा हर कोई कर देगा पर ब्रह्म में रमण, इस सन्दर्भ में वह शून्य मिलेगा।

गाँधी कहा करते थे, एक मन भाषण की अपेक्षा एक कण आचरण श्रेयकर है। महावीर के इस सूत्र से, उन राजनेताओं को भलीभाँति सीख लेनी चाहिये जो; मात्र अपने वाक् चातुर्य के कारण भोली-भाली जनता को, हर पांच साल बाद फंसा लेते हैं। वे स्वयं तो अंधकार में जीते ही हैं, जनता को भी उसी अंधियारे में जीने के लिये अभ्यस्त कर देते हैं। इसलिये नेता शब्द, जो कभी सम्मान का सूचक माना जाता था, बड़े-बड़े लोग चाहते थे कि हमें कोई नेता कहे, आज गाली का रूप धारण कर रहा है। समाज में यदि किसी को नेता कह दो तो वह स्वयं को अपमानित महसूस करेगा। आजकल नेता का अर्थ लगाया जाता है–जो दादागिरी दिखाते हैं या कोरी भाषणबाजी करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लच्छेदार भाषणों से किसी को कुछ समय के लिये तो बांधा जा सकता है, लेकिन सदा के लिये नहीं। भाषणों में कहना कुछ और व्यवहार में उतारना कुछ, यह हमारे व्यक्तित्व के खोखलेपन का परिचायक है।

मैंने सुना है, एक सभा में एक युवक अण्डा सेवन के विरोध में भाषण दे रहा था। अब तक के पन्द्रह मिनट के भाषण में लोगों ने पच्चीसों दफा तालियां बजायी होंगी। लेकिन लोगों की आँखें तब फटी की फटी रह गयीं जब युवक द्वारा पसीना पोंछने के लिये रूमाल निकालने पर जेब से एक अण्डा बाहर निकल पड़ा।

प्रायः भाषणबाजी करने वाले लोग ऐसे ही जीवन-विरोधी होते हैं। ये न केवल औरों को अपितु स्वयं को भी कोरे आश्वासन देते हैं। क्षमा पर घंटों भाषण देने वाले लोगों का, पलभर में मैंने दूध उफनते देखा है। इसलिए महावीर कहने पर कम और करने पर ज्यादा जोर देते हैं। ज्ञान और आचरण दोनों को एक साथ जीवन में उतारने के लिये प्रेरणा देते हैं। भला एक चक्के से कभी रथ चल सकता है, 'न हु एग चक्केण रहो पयाई।'

महावीर ने आज के सूत्र में दो शब्दों का प्रयोग किया – बन्ध और मोक्ष। दोनों शब्दों के अन्तंरग में जाना है। ये दोनों जीवन में एक साथ घटित होते हैं। बन्धन तोड़ने के बाद मोक्ष मिलता हो, ऐसी बात नहीं है। हकीकत में बन्धन-मुक्ति ही, मोक्ष है। लोग बंधन और मुक्ति की चर्चा तो काफी कर लेते हैं, पर वे न तो अपने बंधनों को पहचान पाते हैं और न ही मोक्ष पर विश्वास कर पाते हैं। बंधन और मोक्ष इतने सूक्ष्म हैं कि इन्हें दिखाया नहीं जा सकता, मात्र अनुभव किया जा सकता है –

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठूं ज्ञान माँ
कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूप ने अन्यवाणी तो शूं कहे।
अनुभव गोचर मात्र रह्यूं ते ज्ञान जो।

जिस मोक्ष की, स्वयं सर्वज्ञ ने अपने ज्ञान में देखकर भी व्याख्या नहीं की, भला एक सामान्य व्यक्ति उसकी व्याख्या कैसे कर पाएगा। यह ज्ञान मात्र अनुभव गोचर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहला शब्द है बन्धन, व्यक्ति बंधा है। महावीर इस सत्य की पहचान कराना चाहते हैं कि तुम बंधे हो। देखो इधर-उधर आखिर किस से बंधे हो। किसी ने तुम्हें नहीं बांधा है, तुम अपने आप बंधे हो। यह नागपाश के बंधन से भी मजबूत बंधन है, जिसे महावीर ने मोहपाश कहा है। नागपाश के बन्धन को तोड़ना मुश्किल नहीं है, लौह-श्रृंखलाओं को भी एक झटके में तोड़ा जा सकता है, लेकिन उन सूत के धागों को तोड़ना दुष्कर है, जिन्होंने मोहपाश का रूप धारण कर लिया है। सम्पूर्ण संसार का त्याग करने वाला आर्द्रकुमार' मोह के कच्चे धागों के सामने पस्त हो जाता है। यह बंधन और कुछ नहीं, मात्र आसक्ति है, गहरा सम्मोहन है। यहाँ व्यक्ति सच को झूठ और झूठ को सच मानने के लिये भी तैयार हो जाता है। बचपन से जवानी और जवानी से बुढ़ापा, इस यात्रा में व्यक्ति स्वयं को ऐसे, मकड़ी के जाल में फंसा देता है, जिस का निर्माण वह स्वयं करता है और निकलना उसके वश में नहीं होता है। यही संसार की आसक्ति है, बंधन है, सम्मोहन है, लालसा और तृष्णा है। इनसे मुक्ति का नाम ही मोक्ष है।

एक युवक किसी फकीर के पास रोज-ब-रोज जाया करता था। एक दिन उसने फकीर से निवेदन किया, फकीर साहब ! मैं भी फकीर होना चाहता हूँ। लेकिन मेरे लिये संभव नहीं है। मेरी माँ कहती है कि तुम फकीर हुए तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। पिता कहता है, फाँसी के फन्दे पर लटक जाऊँगा। पत्नी कहती है कि रेल की पटरी पर सो कर खुदकशी कर लूँगी। कहें, घर कैसे छोड़ूं ?

फकीर ने युवक को कुछ समझाया और रवाना कर दिया। युवक घर पहुँचा, बीच आँगन में जाकर निश्चेष्ट हो गया। परिवार के सदस्य डॉक्टर लेकर आये। लेकिन उन्होंने भी हाथ छिटक दिये। युवक को मृत घोषित कर दिया गया।

अगले दिन सुबह शव यात्रा की तैयारियाँ हो रही थीं। चारों ओर गमगीन माहौल था। घर के एक कोने में बैठी युवक की पत्नी छाती पीट-पीट कर विलाप कर रही थी और वह फकीर पहुँच गया। सभी लोग फकीर के पास आये बोले, 'फकीर साहब ! आपका चेला मर गया। आप जैसे-तैसे इसको वापस जीवित कर दीजिये।'

फकीर युवक के पास गया। कुछ नाड़ियां टटोलने का अभिनय किया, फिर कहा 'इस युवक को जीवित तो किया जा सकता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर.....।'

'पर क्या, आप जो कहें, वह करने को मैं तैयार हूँ, पर फकीर साहब ! मेरे बेटे को जीवित कर दीजिये ।' माँ ने फकीर के चरण पकड़ते हुए कहा ।

फकीर मुस्कराये, कहा, 'इस युवक को जीवित तो किया जा सकता है । पर आयी हुई मौत कभी खाली हाथ नहीं जाती । इस युवक के पीछे कोई मरने को तैयार हो, तो मैं इसे जीवित कर सकता हूँ ।'

फकीर की बात सुन सब एक दूजे से पीछे खिसकने लगे । सभी के आँसू सूख गये । फकीर ने सबसे पहले माँ से कहा, 'तुम अपने पुत्र के पीछे मर जाओ ।'

माँ बोली, 'यह कैसे संभव है । मेरा एक बेटा तो नहीं है, पाँच-पाँच बेटे हैं । आखिर किस-किस के लिये मरूंगी ?'

फकीर ने पिता से पूछा । वे कहने लगे, 'मरे के पीछे मरा थोड़ी ही जाता है ।'

युवक की पत्नी ने यह कहकर हाथ छिटक दिये कि जो चले गये है, उन्हें जानें दें । मैं अपनी जिन्दगी जैसे-तैसे चला लूंगी ।

फकीर ने वहाँ खड़े प्रत्येक व्यक्ति से पूछा, लेकिन युवक के लिये मरने को कोई तैयार नहीं हुआ । फकीर युवक के पास गया । एक चांटा मारा, कहा, 'बोल, तू कहता था तेरे घर छोड़ने पर सारा परिवार खुदकशी कर लेगा । देख लिये, संसार के बंधन, कोई तुमसे नहीं बंधा है । तुम बंधे हो सबसे । काश ! इनसे छूट कर तुम अपने आप से बंध पाते ।'

युवक शर्मिन्दा था । फकीर के पाँव दरवाजे की ओर बढ़ गये । लोगों ने देखा युवक फकीर का अनुसरण कर रहा था । दोनों निकल गये, पर कोई कुछ बोल न पाया ।

महावीर इसे बंधन कहते हैं । इस बंधन में व्यक्ति स्वयं जकड़ा है, दोष मढ़ता है, दूसरों के सिर पर । यदि ये बन्धन बाहर के होते तो हर कोई समझ लेता, पर ये भीतर के हैं । मैं आपको वह संदेश देना चाहता हूँ, जिससे आप अपने बन्धनों को समझ सकें और अपनी जन्म-जन्म की जंजीरों को तोड़ सकें । इसलिए महावीर ने बंधन शब्द के साथ ही मोक्ष शब्द का प्रयोग किया, एक से छूटना है और दूसरे में प्रवेश करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। बंधन वह है, जहाँ पदार्थ भावनाओं की दृढ़ता है, और मोक्ष वह है जहाँ से वासनाओं की क्षीणता है। जैसे एक पाँव आगे बढ़ाने से पीछे का स्थान छूट जाता है; संसार ही संन्यास बन जाता है, वैसे ही बंधन और मोक्ष की प्रक्रिया है।

बन्धन और मोक्ष लोग इनमें चूक जाते हैं। मैं देखता हूँ लोग मोक्ष की चर्चाएं करते रहते हैं। मोक्ष कहाँ है ? कैसा है ? क्या स्वरूप है उसका ? पता नहीं कैसे-कैसे प्रश्न खड़े कर देते हैं ? जबकि मोक्ष की न तो चर्चा की जानी चाहिये और न ही व्याख्या, यह तो मात्र अनुभव गोचर है। अगर चर्चा करना चाहते हैं, तो बंधन की चर्चा करो, अगर विचारविमर्श करना चाहते हो, तो वासना का करो, अगर प्रश्न खड़े करना चाहते हो अपनी तृष्णा पर करो क्योंकि ये सब प्रत्यक्ष हैं। इनसे दुःखी हो, संत्रस्त हो, दबे आये हो। मोक्ष उसी स्थिति का नाम है जहाँ इनसे छूट जाओगे। बंधन छूटा कि मुक्ति हुई। मरने के बाद मुक्ति मिलती हो ऐसा न समझें, मृत्यु के उपरान्त तो निर्वाण होता है। इसलिए महावीर और बुद्ध जैसे मनीषियों के लिए, जीवित अवस्था में भी 'मुक्त-पुरुष' शब्द का प्रयोग किया गया। 'मुक्त-पुरुष' का अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने गिरा दिये हैं अपने बंधन, जो निकल आया है संसार के कारागृह से।

संसार के जितने भी धर्म-शास्त्र हैं, उपदेष्टा हैं, चिन्तक या दार्शनिक हैं, अगर उनके सम्पूर्ण दर्शन और चिंतन का सार ढूंढे तो इन दो शब्दों में निहित है। ये दो शब्द ऐसे हैं, जिन पर जितने घंटे बोलना चाहो बोल सकते हो, इनमें बंधन को दुःख रूप समझें और मोक्ष को सुख रूप। 'बंधन और मोक्ष के सिद्धान्तों के बारे में लोग चर्चा करते हैं।' महावीर कहते हैं, इन पर केवल चर्चा नहीं करनी चाहिये, इनको अमल में लाना चाहिये। चित्त और चैत्य–विषय-वासनायें जब इन दोनों का संबंध जुड़ता है, तब व्यक्ति बंधन में जकड़ जाता है और जब इन दोनों का विभाजन होता है, चित्त, चिंता-मुक्त हो जाता है और चैत्य गिर जाता है, तब साधक मोक्ष की अंगड़ाई लेता है। धीरे-धीरे संकल्प गिर जातें हैं और मुक्ति साधक की हथेली में होती है।

महावीर बंधन और मोक्ष की बातें बताते हैं। हकीकत में महावीर ने मोक्ष की चर्चाएं कम की हैं, बंधन पर अधिक प्रकाश डाला है। इसलिए उन्होंने पहला शब्द दिया, बंधन और उसके बाद मोक्ष।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर चिकित्सक की भांति न केवल लोगों को रोगों की जानकारी देते हैं अपितु उनके निवारण के लिए औषधि भी देते हैं। महावीर पहले दुःख की पहचान कराते हैं। यह बताते हैं कि तुम दुःखी हो, जिन तत्त्वों से दुःखी हो वे सब नश्वर हैं। नश्वर है तुम्हारी आयु, चचंल है तुम्हारा यौवन और चपल है भोग-विलास। इन सब में सुख ढूंढ रहे हो। ये सब तो दुःख-रूप हैं, इनमें वैसा ही कल्पित आनंद मिलता है जैसा हड्डी चूसने से, कुत्ते को।

महावीर कहते हैं, 'मैं दुःख छुड़ाना चाहता हूँ और सुख दिलाना चाहता हूँ, पर तब तक सुख कैसे पा सकोगे जब तक दुःख से अपने पांव को बाहर नहीं निकालोगे। तब तक कैसे स्वच्छ हो सकोगे, जब तक कीचड़ से स्वयं को उपरत नहीं कर लोगे।

महावीर बंधन की चर्चा कर रहे हैं। लहुलुहान दुनिया को देख रहे हैं, जहाँ सिवा गिला और शिकवा के कुछ नहीं है। जिसे हम जीवन की असलियत समझ बैठे हैं, उससे कभी प्रेम और शांति के स्रोत नहीं बहेगें। यह तो रेगिस्तान में हरियाली ढूंढने का काम होगा। मुक्ति, मात्र देह मुक्ति ही नहीं है, मुक्ति अन्तर के बन्धनों को तोड़ने का नाम है। बाहर के बन्धनों से छुटकारा हर किसी के लिए सहज है, लेकिन भीतर के बंधनों से छूटना, इसका नाम मुक्ति है, मोक्ष है, निर्वाण है। निर्वाण, ज्योति की उस स्थिति का नाम है, जहाँ ज्योति तो रहती है पर निधूर्म। मुक्ति संकोचन नहीं है, मुक्ति विस्तार है, शलाकाओं से मुक्ति है। बंधन में बंधा इंसान किसी एक में प्यार ढूंढेगा और मुक्तपुरुष सृष्टि के हर अंश में, हर कोण में –

दिल को लहू लुहान करें, शायद प्यार यही है।
जीना क्या बस मरते रहें, शायद प्यार यही है।
सब कुछ पाने के चक्कर में जाने कहाँ-कहाँ जाएं,
खाली हाथ ही लौट चलें, शायद प्यार यही है।
नखलिस्तानों की हरियाली, जाने कब और कहाँ मिले।
सहराओं में सफर करें, शायद प्यार यही है।
बादल बनकर रहें उमड़ते, बस्ती-बस्ती नगर-नगर
प्यासी रेत में सफर करें, शायद प्यार यही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिरनों जैसे मन-मन भटकें, लौटें फिर बेबस
अपनी ही कस्तूरी खोजें, शायद प्यार यही है ।

बंधन को तोड़कर विराट होना, यही तो जिंदगी की विराटता है । जो बंधन में है, वह परतंत्र है और जो बन्धन-मुक्त है, उसी को स्वतंत्र कहा जा सकता है । देश को स्वतंत्र कराना फौलादी लोगों का काम है, पर अपने आपको स्वतंत्र करना, उससे भी अधिक हिम्मत का काम है। अंग्रेजों से मुक्त होने वाले हम, क्या क्रोध, मान, माया और वासना से मुक्त हो पाये हैं ? दुनिया को जीतने की बजाय अपने आपको जीतना ज्यादा दुष्कर, पर श्रेयस्कर है । विश्व-विजेता सिकन्दर क्या अंत में अपने-आपसे नहीं हारा था ? सिवा एक कण गम के अलावा वह साथ क्या ले जा पाया ? इसलिए विज्ञान-भिक्षु कहते हैं–

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले भूतल ।
सर्वाशासंक्षये चेतः क्षयो मोक्ष इति श्रुतः ॥

मोक्ष न तो गगनतल में है, न पाताल में है और न पृथ्वी पर है । सब आशाओं का क्षय होने पर, चित्त का क्षय, मोक्ष कहा गया है । विज्ञान-भिक्षु बड़ी रहस्य भरी बात कह रहे हैं । अब तक यही सुना है कि मोक्ष गगनतल में है, स्वर्ग गगन के नीचे है और उससे नीचे संसार है और नरक उससे भी नीचे है । हकीकत में तो जब हम कुण्ठा ग्रस्त होते हैं, तब नरक में जीते हैं । जब परिवार के बीच होते हैं तब संसार में जीते हैं, इसलिए जीवन-मुक्ति शब्द का प्रयोग मिलता है । बनादास कहते थे – 'जीवित मुक्ति नहीं पावे मुए मुक्ति भ्रम कहिये ।' जो व्यक्ति जीवित अवस्था में मुक्ति नहीं पा सकता है, मरकर वह कैसे पायेगा । हकीकत में मुक्ति जीवित अवस्था में ही मिलती है, मरकर तो निर्वाण मिलता है । कर्म मुक्ति जी कर पायी जाती है, मरकर नहीं ।

महावीर कहते हैं, 'जो बंधन और मोक्ष के सिद्धान्तों के बारे में कहते तो बहुत कुछ हैं पर करते कुछ भी नहीं ।' इसे तुलसी के शब्दों में ऐसे समझें– 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते, नर न घनेरे' उपदेश हर कोई दे सकता है, हर विषय पर दे सकता है, लेकिन जीवन में उन सिद्धान्तों को अपनाना, हर किसी के बलबूते की बात नहीं है । महावीर ऐसे लोगों के लिये ज्ञानवादी शब्द का प्रयोग करते हैं । वे केवल ज्ञान में जीते हैं, ज्ञान का भार ढोते हैं और जिन्दगी की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम घड़ी तक भी शास्त्रों के भार से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते– 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।'

महावीर, कबीर, तुलसी ये सब उन लोगों को लताड़ रहे हैं, जो मात्र व्याकरण के सूत्र रट रहे हैं, शास्त्रों का भार ढो रहे हैं। महावीर ऐसे लोगों के लिए, ज्ञानवादी शब्द का प्रयोग करते हैं। ज्ञानवादी वाद-विवाद कर लेंगें, शास्त्रार्थ में जीत जायेंगे, पर जीवन फिर भी खोखला का खोखला ही रह जायेगा। लड्डू-लड्डू कहने से अगर उदर-पूर्ति हो जाती, तो संसार भर की सारी मिठाई की दुकानों पर ताला लग जाता। उदरपूर्ति नामोच्चारण मात्र से नहीं, भोजन करने से होती है। वे लोग कैसे उदर-पूर्ति कर पायेंगे, जो केवल नाम ही रटते रहते हैं। ईसा कहा करते थे–'वह हर कोई जो ईसा-ईसा पुकारता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर पायेगा। स्वर्ग वह पायेगा, जो परम पिता की इच्छानुसार काम करता है।'

एक व्यक्ति वह है, जो केवल परमात्मा का नाम-स्मरण करता है और एक व्यक्ति वह है, जो परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। इनमें यथार्थतः परमात्मा की उपासना वही कर रहा है, जो परमात्मा की आज्ञाओं का पालन कर रहा है। अपने कर्त्तव्यों को छोड़, जो मात्र कृष्ण-कृष्ण रटता है, वह भला कृष्ण को कैसे पा सकेगा। आवश्यकता धर्म के कथन की नहीं, धर्म के परिपालन की है, क्योंकि धर्म की रक्षा के लिये ही तो स्वयं कृष्ण ने जन्म लिया था।

सूत्र में कहा, 'ज्ञानवादी केवल वाणी की वीरता से ही अपने आपको आश्वस्त करते हैं।' वाक् चातुर्य तो हर कोई हासिल कर सकता है, पर जीवन-संस्कार हर किसी के हाथ की बात नहीं है। जो केवल वाणी की वीरता में जीते हैं, अगर जीवन निर्माण की प्रतियोगिता आयोजित की गई तो वे ज्ञानवादी पराजित हो जायेंगे। वे अगर कभी जीत भी पायेगें तो केवल गप्पें हाँकने में। ऐसी-ऐसी गप्पें हांकते हैं लोग, अगर सुनो तो हंसते रह जाओगे। आते हैं 'तूफान' में और कहेंगे 'राजधानी' से आया हूँ। प्लेट–फार्म पर उतरेंगे 'पैसेन्जर' से और कहेंगे 'शताब्दी' से आया हूँ। अपनी मान मर्यादाओं को बढ़ाने के लिये लोग इतना सफेद झूठ बोल जाते हैं, जिनका उनके जीवन के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वे केवल कह सकते हैं, कर नहीं सकते। वे स्वर्ण पदक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गप्पें हांकने की प्रतियोगिता में ही हासिल कर सकते हैं, पर वार्सीलोना जाकर मिट्टी का पदक भी नहीं ला पायेंगे । ये केवल ज्ञानवादी हैं, कहेंगे, हमने सब कुछ जाना है, हम सर्वज्ञ हैं, लेकिन हकीकत में ये अपने आपकी की भी पहचान नहीं कर पाये हैं ।

मैंने सुना है, जर्मन में एक प्रतियोगिता आयोजित की गई, गप्पें हांकने की । तीन देशों के प्रतियोगियों ने भाग लिया चीन, पाकिस्तान और भारत ।

प्रतियोगिता शुरू हुई । पाकिस्तानी ने कहा, 'मेरे देश में एक आदमी सात मंजिल से नीचे गिरा । सोमवार को लुढ़का और मंगलवार को नीचे पहुँचा ।'

चीन का प्रतियोगी खड़ा हुआ । उसने कहा, 'इसका गप्पा कोई खास नहीं है, मेरा गप्प सुनें, मेरे देश में एक व्यक्ति आठ मंजिल से नीचे गिरा, सोमवार को ऊपर से गिरा और शनिवार को नीचे पहुँचा । लोगों ने तालियाँ बजायीं । गप्प में कुछ दम था ।

भारतीय खड़ा हुआ, स्वर्ण पदक लाने का, देश को वचन देकर आया था, कहने लगा, 'मेरे देश में एक व्यक्ति नौ मंजिल से नीचे गिरा । वह होली को ऊपर से लुढ़का और दीपावली को धरती पर पहुँचा ।'

भारतीय का, लोगों ने तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया । वह स्वर्ण पदक लेकर भारत पहुँचा कहा, 'मेरा देश सब में हार सकता है पर गप्पें हांकने में यहाँ का बच्चा भी जीत जायेगा ।'

यह गप्पबाजों का देश है । जैसे हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के कुछ और होते हैं, वैसे ही ये वचनवीर कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ, बाहर कुछ, भीतर कुछ । ये केवल वाणी के वीर हैं । इसलिए महावीर कहते हैं कि ऐसे लोग केवल अपने आपको आश्वासन देते हैं । ये बातों के बादशाह हैं और जीवन के भिखारी । महावीर कहते हैं, 'जीवन में संगम हो ज्ञान और चरित्र का ।' कोरे भाषण और आश्वासन देने से जीवन-निर्माण नहीं हुआ करता । हिमालय की यात्रा का आनंद, नक्शे और किताबों से नहीं, वहाँ जाने से मिलेगा । नक्शे और किताबें सूचनाएं दे सकती हैं, सारी जानकारियां दे सकती हैं, लेकिन आनंद नहीं दे सकतीं । इसलिए भगवान कहते हैं, 'जो कहते तो बहुत कुछ हैं, लेकिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते कुछ भी नहीं वे केवल अपने आपको आश्वासन दे रहे हैं।'

दुनिया में दो तरह के वीर होते हैं - एक तो वचनवीर और दूसरे कर्मवीर। वचनवीर, कर्मवीर हो यह कठिन है। सच तो यह है कि कर्मवीर, वचनवीरता में विश्वास ही नहीं रखते। ऐसे लोग जबान से नहीं, आचरण से ही अपनी बात को व्यक्त करते हैं।

आज जब राजनेताओं को सभी लोग कथनी-करनी में फर्क रखने वाले मानते हैं, वहाँ गांधीजी के प्रति हर कोई आदर्श भावना रखता है। उनकी राजनीति, महत्वाकांक्षा की आपूर्ति नहीं वरन् राष्ट्रनीति रही। राष्ट्र के लिए जिये, खुद एक राष्ट्र बनकर जिये। नतीजतन, एक राजनेता होकर भी दुनिया की नजरों में महात्मा बने। विदुर, चाणक्य और गांधी तीनों लोग अलग-अलग समय में हुए, पर राष्ट्र के लिए नैतिकता को आत्मसात् करने वाले हुए थे।

विश्व ऐसे कर्मवीरों को, गांधियों को सदा सम्मान देता रहेगा। कहकर करना, करके कहना और करने को ही कहना मानना, जीवन के अलग-अलग रूप हुए। तीनों के अपने-अपने दायरे और प्रभाव हैं, अब यह आप पर है कि आपको कौन-सा रूप अपने लिए स्वीकार्य लगता है।

□

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन का उपलब्ध साहित्य

(मात्र लागत मूल्य पर)

फाउंडेशन का साहित्य सदाचार एवं सद्विचार का प्रवर्तन करता है। इस परिपत्र में जोड़ा गया साहित्य अलौकिक है, जीवन्त है। इस जीवन्त साहित्य को आप स्वयं संग्रहीत कर सकते हैं, मित्रों को उपहार के रूप में दे सकते हैं। इन अनमोल पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए आप सस्नेह आमंत्रित हैं।

ध्यान/अध्यात्म/चिन्तन

अप्प दीवो भव: महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

श्री चन्द्रप्रभ के अनमोल वचनों का संकलन; जीवन, जगत् और अध्यात्म के विभिन्न आयामों को उजागर करता चिन्तन-कोष; आत्म-क्रान्ति का अमृत-सूत्र।

पृष्ठ ११२, मूल्य १५/-

चलें, मन के पार: महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

विश्व-स्तर पर प्रशंसित ग्रन्थ, जिसमें दरशाये गये हैं मनुष्य के अन्तर-जगत् के परिदृश्य; सक्रिय एवं तनाव-रहित जीवन प्रशस्त करने वाला एक मनोवैज्ञानिक युगीन ग्रन्थ। पृष्ठ ३००, मूल्य ३०/-

व्यक्तित्व-विकास: महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

हमारा व्यक्तित्व ही हमारी पहचान है, तथ्य को उजागर करने वाली पुस्तक, जो बचपन से पचपन की हर उम्र वालों के लिए उपयोगी। एक बाल-मनोवैज्ञानिक प्रकाशन। पृष्ठ ११२, मूल्य १०/-

संसार और समाधि: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

संसार पर इतना खूबसूरत प्रस्तुतिकरण पहली बार। संसार की क्षणभंगुरता में शाश्वतता की पहल। यह किताब बताती है कि संसार में रहना बुरा नहीं है। अपने दिल में संसार को बसा लेना वैसा ही अहितकर है, जैसे कमल पर कीचड़ का चढ़ना। पृष्ठ १६८, मूल्य १५/-

संभावनाओं से साक्षात्कार: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

अस्तित्व की अनंत संभावनाओं से सीधा संवाद। पृष्ठ ९२, मूल्य १०/-

ज्योति जले बिन बाती: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

ध्यान-साधकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक, जिसमें है ध्यान-योग की हर बारीकी का मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन। पृष्ठ १०८, मूल्य १०/-

आंगन में आकाश: महोपाध्याय ललितप्रभसागर

तीस प्रवचनों का अनूठा आध्यात्मिक संकलन, जो आम आदमी को भी प्रबुद्ध करता है और जोड़ता है उसे अस्तित्व की सत्यता से। पृष्ठ २००, मूल्य २०/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-यात्रा : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
सुप्रसिद्ध प्रवचनकार श्री चन्द्रप्रभ के मानक प्रवचनों का अनोखा संकलन। जीवन के हर क्षितिज में कदम-कदम पर राह दिखाने वाला यात्रा-स्तम्भ। मौलिक जगत में जीने वालों के लिए विशेष उपयोगी। *पृष्ठ ३८६, मूल्य ५०/-*

नवजीवन : *महोपाध्याय ललितप्रभसागर*
व्यक्तित्व को ज्योतिर्मय बनाने वाली प्रवचनावली। प्रवचनों में है विषयगत गाम्भीर्य और जनमानस की उपयुक्त नापजोख। *पृष्ठ ७६, मूल्य ५/-*

अमीरसधारा : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
जिनत्व के सम्पूर्ण विराट वैभव को भाषा की ताजगी एवं विश्लेषण की गहराई के साथ प्रस्तुत करने वाले प्रवचनों का संकलन। *पृष्ठ ८०, मूल्य ५/-*

प्रेम के वश में है भगवान : *महोपाध्याय ललितप्रभसागर*
एक प्यारी पुस्तक, जिसे पढ़े बिना मनुष्य का प्रेम अधूरा है। पृष्ठ ४८, मूल्य ३/-

जित देखूं तित तूं : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
ईश्वर-प्रणिधान पर अनुपमेय पुस्तिका। अस्तित्व के प्रत्येक अणु में परमात्म-शक्ति को उपजाने का श्लाघनीय प्रयत्न। *पृष्ठ ३२, मूल्य २/-*

चलें, बन्धन के पार : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
बन्धन-मुक्ति के लिए क्रान्तिकारी सन्देश। प्रवचनों में है बन्धन की पहचान और मुक्ति का निदान। आम नागरिक के लिए विशेष उपयोगी प्रकाशन।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

वही कहता हूँ : *महोपाध्याय ललितप्रभसागर*
अध्यात्म के उपदेष्टा ललितप्रभ जी के दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित स्तरीय प्रवचनांशों का संकलन, लोकोपयोगी प्रकाशन। *पृष्ठ ३२, मूल्य २/-*

समाधि की छांह : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
ध्यान की ऊंचाइयों को आत्मसात् करने के लिए एक तनाव-मुक्त स्वस्थ मार्ग-दर्शन। जीवन-कल्प के लिए एक बेहतरीन पुस्तक। *पृष्ठ ८४, मूल्य ५/-*

आंख दो, रोशनी एक : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
बिना आसन लगाए सिद्धि दिलाने वाली एक उपयोगी पुस्तक।
पृष्ठ २४, मूल्य २/-

मैं तो तेरे पास में : *महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर*
गंभीर एवं दार्शनिक विचारों का बोलता दस्तावेज। ध्यान-साधना के जगत् में मार्गदर्शक एक मील का पत्थर। *पृष्ठ ६४, मूल्य ५/-*

विराट सच की खोज में : *महोपाध्याय ललितप्रभसागर*
सत्य की अनन्त संभावनाओं को दर्शाने वाला एक ज्योतिर्मय चिंतन।
पृष्ठ ६४, मूल्य ६/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमृत-संदेश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
सद्गुरु श्री चन्द्रप्रभ के अमृत-संदेशों का सार-संकलन। पृष्ठ ५६, मूल्य ३/-

प्याले में तूफान : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
इन्सानियत एवं समाज में आई कमियों की ओर इशारा, आम आदमी से लेकर सम्पूर्ण विश्व के दिल में भड़कते तूफान का बेबाक आकलन; सभी लेख स्तरीय और अनिवार्यतः पठनीय। पृष्ठ ९०, मूल्य १०/-

पर्युषण-प्रवचन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
पर्युषण-महापर्व के प्रवचनों को घर-घर पहुंचाने के लिए एक प्यारा प्रकाशन; भाषा सरल, प्रस्तुति मनोवैज्ञानिक। पढ़ें कल्पसूत्र को अपनी भाषा में।
पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

ध्यान : प्रयोग और परिणाम : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
ध्यान के विभिन्न पहलुओं पर जीवन्त विवेचन। भगवान महावीर की निजी साधना-पद्धति का स्पष्टीकरण। पृष्ठ ११२, मूल्य १०/-

लाईट-टू-लाइट : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
ध्यान में अभिरुचिशील लोगों के लिए 'माइल-स्टॉन'। विश्व के दूर-दराज तक फैली ध्यान-पुस्तिका। पृष्ठ ९२, मूल्य १०/-

द प्रिजर्विंग ऑफ लाइफ : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
मानव-चेतना के विकास के हर संभव पहलू पर प्रकाश। पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

मेडिटेशन एण्ड एनलाइटमेंट : चन्द्रप्रभ
मन एवं मस्तिष्क के संतुलन से लेकर ध्यान और समाधि के विभिन्न पहलुओं पर मनन और विश्लेषण; विदेशों में भी अत्यधिक प्रसारित/स्वीकृत।
पृष्ठ १०८, मूल्य १५/-

आगम/शोध/कोश

आयार-सुत्तं : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
एक आदर्श धर्म-ग्रन्थ का मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ अभिनव प्रकाशन जो सद्विचार के सूत्रों में सदाचार का प्रवर्तन करता है। शुद्ध मूलानुगामी अनुवाद छात्रों के लिए विशेष उपयोगी। ग्रन्थ का फैलाव सीमित, किन्तु प्रस्तुतिकरण सर्वोच्च। विज्ञान एवं चिन्तन के क्षेत्र में एक खोज॥ पृष्ठ २६०, मूल्य ३०/-

सूयगड-सुत्तं : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
प्रसिद्ध धार्मिक-दार्शनिक आगम-ग्रन्थ सूत्रकृतांग का मूल एवं सशक्त अनुवाद। साथ ही प्रत्येक अध्ययन का चिन्तनपरक प्रास्ताविक। पृष्ठ १७६, मूल्य २०/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय-सुत्तं : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
विश्वविद्यालय-पाठ्यक्रम के स्तर पर तैयार किया गया जैन-आगम समवायांग का सीधा-सपाट मूलानुगामी अनुवाद। पृष्ठ ३१८, मूल्य ३०/-

उत्तराध्ययन के सूक्त वचन : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
आगम-ग्रन्थ उत्तराध्ययन की सार्वभौम एवं सार्वकालिक सूक्तियों का चयन। अनुवाद की भाषा आकर्षक एवं प्रांजल। पृष्ठ ५२, मूल्य ४/-

चन्द्रप्रभ : जीवन और साहित्य : डॉ. नागेन्द्र
महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागरजी की साहित्यिक सेवाओं का विस्तृत लेखा-जोखा। एक समीक्षात्मक अध्ययन। पृष्ठ १६०, मूल्य १५/-

उपाध्याय देवचन्द्र : जीवन, साहित्य और विचार : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
महान् तत्त्वविद् उपाध्याय श्री मद् देवचन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रशस्त प्रकाश डालने वाला एक शोधपूर्ण प्रबन्ध।
पृष्ठ ३२०, मूल्य ५०/-

विश्व-संस्कृत-सूक्ति-कोश : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
संस्कृत की विराट सम्पदा के सूक्त-रत्नों की विश्व-चयनिका, जो सूक्ति-कोश भी है और सन्दर्भ-कोश भी। हिन्दी अनुवाद की शालीनता कोश की अतिरिक्त विशेषता। तीन खंडों में ग्रन्थ का आकलन। पृष्ठ १०००, मूल्य ३००/-

जैन पारिभाषिक शब्द-कोश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
जैन-परम्परा में प्रचलित दुरूह एवं पारिभाषिक शब्दों पर टिप्पणी एवं परिचर्चा करने वाला एक उच्चस्तरीय कोश। पृष्ठ १५२, मूल्य १०/-

हिन्दी सूक्ति-सन्दर्भ कोश : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
हिन्दी के सुविस्तृत साहित्य से सूक्तियों का ससन्दर्भ संकलन; भारतीय सन्तों एवं मनीषियों के चिन्तन एवं वक्तव्यों का सारगर्भित सम्पादन; आम पाठकों के अलावा लेखकों के लिए खास कारगर; एक आवश्यकता की वैज्ञानिक आपूर्ति। दो भागों में। पृष्ठ ७००, मूल्य १००/-

पंच संदेश : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
पुस्तक में है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर कालजयी सूक्तियों का अनूठा सम्पादन। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

सन्त-वाणी

महाजीवन की खोज : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
आचार्य कुन्दकुन्द, योगीराज आनंदघन एवं श्रीमद् राजचन्द्र जैसे अमृत-पुरुषों के चुने हुए अध्यात्म-पदों पर बेबाक खुलासा। घर-घर पठनीय प्रवचन-संग्रह। हर मुमुक्षु एवं साधक के लिए उपयोगी। पृष्ठ १४८, मूल्य १०/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बूझो नाम हमारा: महोपाध्याय ललितप्रभसागर
योगीराज आनंदघन के पदों पर किया गया मनोवैज्ञानिक विवेचन, जो पाठक को मौलिक व्यक्तित्व से परिचय करवाता है। पृष्ठ ६८, मूल्य ५/-

मैं कौन हूं: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
अध्यात्म-पुरुष राजचन्द्र के अनुभव-गीतों की गहराइयों को उजागर करने वाले प्रवचनों का संकलन। पृष्ठ ६८, मूल्य ३/-

देह में देहातीत: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
प्रसिद्ध अध्यात्मवेत्ता आचार्य कुन्दकुन्द की टेढ़ी गाथाओं पर सीधा संवाद। विशिष्ट प्रवचन। पृष्ठ ७२, मूल्य ५/-

भगवत्ता फैली सब ओर: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
आचार्य कुन्दकुन्द के अष्टपाहुड़ ग्रन्थ से ली गई आठ गाथाओं पर बड़ी मार्मिक उद्‌भावना। इसे तन्मयतापूर्वक पढ़ने से जीवन-क्रान्ति और चैतन्य-आरोहण बहुत कुछ सम्भव। पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

सहज मिले अविनाशी: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
पतंजलि के प्रमुख योग-सूत्रों के आधार पर परमात्मा से सहज साक्षात्कार। पृष्ठ ९२, मूल्य १०/-

अंतर के पट खोल: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
पतंजलि के दस सूत्रों पर पुनर्प्रकाश; योग की एक अनूठी पुस्तक। पृष्ठ ११२, मूल्य १०/-

हंसा तो मोती चुगै: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
भगवान महावीर के कुछ अध्यात्म-सूत्रों पर सामयिक प्रवचन। पृष्ठ ८८, मूल्य १०/-

कथा-कहानी

सिलसिला: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
कहानी-जगत की अनेक आजाद वारदातें, पशोपेश में पड़े इंसान के विकल्प को तलाशती दास्तान। बालमन, युवापीढ़ी, प्रौढ़ बुजुर्गों के अन्तर्मन को समान रूप से छूने वाली कहानियों का संकलन। पृष्ठ ११०, मूल्य १०/-

संसार में समाधि: महोपाध्याय ललितप्रभसागर
समाधि के फूल संसार में कैसे खिल सकते हैं, सच्चे घटनाक्रमों के द्वारा उसी का सहज विन्यास। हर कौम के लिए शान्ति और समाधि का संदेश। पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

लोकप्रिय कहानियाँ: महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
जैन संस्कृति को उजागर करने वाली सुप्रसिद्ध कथा-कहानियों का सार-संक्षेप। सहज भाषा में जैनत्व की धड़कन। पृष्ठ ४८, मूल्य ३/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचामृत: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
चेतना-जगत में इंकलाब की क्रान्ति का नारा देने वाली गुजराती भाषा में निबद्ध पुस्तक। आगम-पत्रों की नये ढंग से कथा-शैली में पुन: प्रतिष्ठा।
पृष्ठ ९६, मूल्य ७/-

संत हरिकेशबल: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
अस्पृश्यता-निवारण के लिए बोलती एक रंगीन कहानी। बच्चों के लिए सौ फीसदी उपयोगी। पृष्ठ २४, मूल्य ४/-

दादा दत्त गुरु: महोपाध्याय ललितप्रभसागर
पहले दादा गुरुदेव आचार्य जिनदत्तसूरि की सर्वप्रथम प्रकाशित चित्र-कथा; ज्ञानवर्धक, रोचक भी। पृष्ठ २४, मूल्य ४/-

सत्य, सौन्दर्य और हम: महोपाध्याय ललितप्रभसागर
सुन्दर, सरस प्रसंग, जिनमें सच्चाई भी है और युग की पहचान भी।
पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

घट-घट दीप जले: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित चन्द्रप्रभ जी की उन कहानियों का संकलन, जिनमें जीवन-दीप की आत्मा हर शब्द में फैल रही है। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

कुछ कलियाँ, कुछ फूल: महोपाध्याय ललितप्रभसागर
संसार के विभिन्न कोनों में हुए सद्गुरुओं की उन घटनाओं का लेखन, जिनमें छिपे हैं जीवन-क्रान्ति और विश्व-शान्ति के सन्देश। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

काव्य-कविता

बिम्ब-प्रतिबिम्ब: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
जीवन की उधेड़बुन को प्रस्तुत करने वाली एक सशक्त प्रौढ़ काव्य-कृति। सत्य के संगान का अभिनव प्रयत्न। पृष्ठ ८४, मूल्य ७/-

छायातप: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
अदृश्य प्रियतम की कल्पना की रंगीन बारीकियों का मनोज्ञ चित्रण। रहस्यमयी छायावादी कविताओं का एक और अभिनव प्रस्तुतिकरण। पृष्ठ१०८, मूल्य १०/-

जिन-शासन: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
एक अनूठी काव्यकृति, जिसमें है सम्पूर्ण जैन शासन का मार्ग-दर्शन। काव्य-शैली में जैनत्व को समग्रता से प्रस्तुत करने वाला एक मात्र सम्पूर्ण प्रयास।
पृष्ठ ८०, मूल्य ३/-

अधर में लटका अध्यात्म: महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
दिल की गहराइयों को छू जाने वाली एक विशिष्ट काव्यकृति। पढ़िए, मस्तिष्क के परिमार्जन एवं जीवन के सम्यक् संस्कार के लिए। पृष्ठ १५२, मूल्य ७/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गीत-भजन-स्तोत्र

प्रार्थना : महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर
चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति-वन्दना ; नई लयों में रस-भावों की अभिव्यक्ति। प्रत्येक तीर्थंकर के नाम स्वतंत्र प्रार्थना और भजन। पृष्ठ ५२, मूल्य ५/-

दादा गुरु-भजनावली : महोपाध्याय विनयसागर
'दादा-गुरुदेव' के नाम से विश्व-विख्यात आचार्य जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि आदि चार दादा गुरुओं की स्तुति/प्रार्थना से संबंधित मंत्र-तंत्र बिखरे स्तोत्रों/भजनों का सर्वांगीण विराट-अपूर्व संकलन। पृष्ठ ६००, मूल्य ५०/-

महान् जैन स्तोत्र : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
अत्यन्त प्रभावशाली एवं चमत्कारी जैन स्तोत्रों का विशाल संग्रह।
पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

श्रद्धांजलि : महोपाध्याय ललितप्रभसागर
भजनों और गीतों का सम्पूर्ण संग्रह। प्रभात-वन्दना एवं भजन-संध्या में नित्य उपयोगी। पृष्ठ ३२, मूल्य २/-

भक्तामर : आचार्य मानतुंगसूरि
सुप्रसिद्ध भक्तामर-स्तोत्र का शुद्ध-परिमार्जित प्रकाशन ; मूलपाठ के साथ है हिन्दी अनुवाद गद्य-पद्य दोनों में। पृष्ठ ४८, मूल्य ३/-

जैन भजन : महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर
लोकप्रिय तर्जों पर निर्मित भावपूर्ण गीत-भजन। छोटी, किन्तु प्यारी पुस्तक।
पृष्ठ ४८, मूल्य २/-

रजिस्ट्री चार्जेज एक पुस्तक पर ८/-, संपूर्ण सेट डाक-व्यय से मुक्त। धनराशि श्री जितयशाश्री फाउंडेशन (SRI JIT-YASHA SHREE FOUNDATION) कलकत्ता के नाम पर बैंक-ड्राफ्ट या मनिआर्डर द्वारा भेजें। आज ही लिखें और अपना ऑर्डर भेजें।

सम्पर्क सूत्र :

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन

९ सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट, (रूम नं. २८) कलकत्ता- ७०००६९

दूरभाष : २०८७२५/५००४१४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन द्वारा

साहित्य-विस्तार की अभिनव योजना

✦ अपने घर में अपना पुस्तकालय ✦

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन, लाभ-निरपेक्ष एवं विश्व-श्रेय के लिए समर्पित संस्थान है। साहित्य-विस्तार एवं कला-प्रस्तुति के क्षेत्र में इसके अपने कीर्तिमान हैं। सदाचार एवं सद्-विचार की गंगा-यमुना को घर-घर ले जाने के लिए यह संस्थान निरन्तर प्रयत्नशील है। जैन-धर्म के उन सिद्धान्तों एवं आदर्शों को हर घर पहुँचाना हमारा उद्देश्य है, जिनकी जरूरत हर समय, हर व्यक्ति और हर समाज को रही है। फाउंडेशन के विविध विषयों से जुड़े हुए साहित्य को भारत के प्रमुख पत्रों एवं विद्वानों ने न केवल सराहा है, अपितु उसकी सेवाओं को अनिवार्य भी माना है।

फाउंडेशन द्वारा प्रसारित साहित्य युग-युग की सम्पदा है और आधुनिक चिन्तन-जगत् की बेहतरीन प्रस्तुति है। आम आदमी से लेकर विद्यार्थियों और प्रबुद्ध लोगों की ज्ञान-क्षेत्र की हर जिज्ञासा को समाधान देने में यह साहित्य लाजवाब है।

अपना पुस्तकालय अपने घर में बनाने के लिए फाउंडेशन ने एक अभिनव योजना बनाई है। इसके अन्तर्गत आपको सिर्फ एक बार ही फाउंडेशन को एक हजार रुपये का अनुदान देना होगा, जिसके बदले में फाउंडेशन अपने यहाँ से प्रकाशित होने वाले प्रत्येक साहित्य को आपके पास आपके घर पहुँचाएगा और वह भी आजीवन। इस योजना के तहत एक और विशेष सुविधा आपको दी जा रही है कि इस योजना के सदस्य बनते ही आपको रजिस्टर्ड डाक से फाउंडेशन का अब तक प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य निःशुल्क प्राप्त होगा।

लीजिए ! आप हमारी इस साहित्य-योजना के आजीवन सदस्य बनकर अपने घर में अपना पुस्तकालय बनाइये और व्यावहारिक जीवन की बातों से लेकर ध्यान, साधना, समाधि, चिन्तन, प्रवचन, कहानी, आगम, इतिहास एवं दर्शनक्षेत्र की अनमोल पुस्तकें अपने घर में बसाइये।

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन, ९-सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट), कलकत्ता-७०००६९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org